विश्वात्मा श्री आदिनाथ

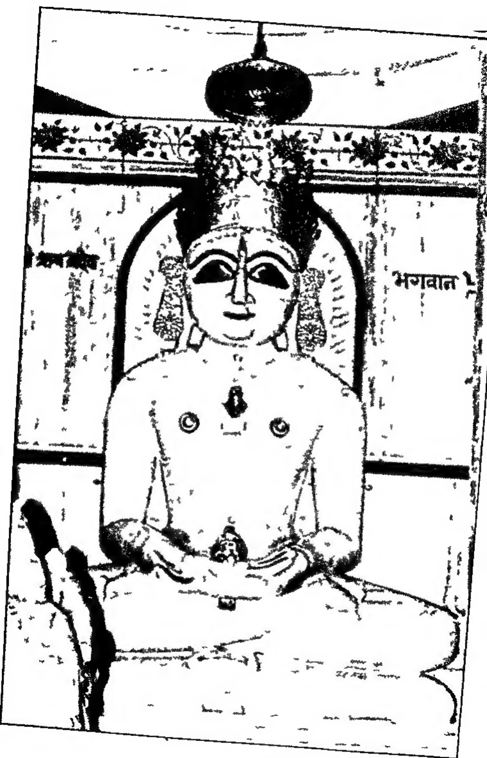
महोपाध्याय माणकचन्द रामपुरिया



कलासन प्रकाशन
कल्याणी भवन, बीकानेर (राज)



कलासन प्रकाशन
कल्याणी भवन, बीकानेर (राज)


भगवान

ISBN 81 86842 18 7

सस्करण प्रथम 1997

प्रकाशन फलासन प्रकाशन
बीकानेर (राज)

मुद्रक कल्याणी प्रिन्टर्स
माल गोदाम रोड बीकानेर

मूल्य 150 रुपये

Vishwatma Sri Adhinath
(EPIC) by Mahopadhaya Manakchand Rampuria
Price 150/-

समर्पण –

अर्पण और समर्पण कैसा–
किसको मैं क्या दे सकता?
विश्वात्मा श्री आदिनाथ की–
पद–रज सिर पर ले सकता।
उनके निर्मल भाव सुमन को–
चुन–चुन हार बनाता हूँ,
स्वय करेंगे ग्रहण, चरण पर–
जो भी पुष्प चढ़ाता हूँ।

महोपाध्याय माणकचद रामपुरीया

आत्मभिव्यक्ति

भव्य भारत की दिव्य भूमि अनादिकाल से ही सिद्ध-साधक, देव-ऋषियों और तीर्थंकरो की पावन सिद्ध-स्थली रही है। इस धरा धाम पर उन आविर्भूत महामानवों ने जो स्तुत्य कार्य किये हैं उनमें त्रिकालदर्शी सर्वज्ञ विश्वात्मा श्री आदिनाथ, तो ऋषभदेव की सज्ञा से भी अभिहित हैं, यद्यपि उनके महत्व और तत्त्व का वर्णन लेखनी में आवद्ध कर सकना सर्वथा असम्भव है फिर भी जो मूलभूत प्रेरणा के अजस्र स्त्रोत हैं, आत्मा के तत्त्व प्रदर्शक हैं वे ही विश्वात्मा अनादिकाल से जन-जीवन के प्रेरक रहे हैं। जिनकी कृपा-कोर से लौकिक-पारलौकिक सभी तत्त्वों की प्राप्ति सहज सम्भव है। उनके विषय में सर्व साधारण को परिज्ञान कराना और सिद्ध साधना की ओर अग्रसर करना ही हमारी आत्मा और प्रस्तुत महाकाव्य के प्रणयन का मूल स्वर और उद्देश्य है।

सार्वजनिक, सार्वकालिक कल्याण हेतु भगवान श्री के प्रति यह आत्म-भाव और स्तवन करना वाँछित है।

मैंने अपने स्वल्प ज्ञान, शक्ति और भक्ति के माध्यम से उस पूर्ण ज्ञानी पर ब्रह्म आप्तकाम परम निष्काम दादा श्री आदिनाथ को जो यत्किचित भावाञ्जलि समर्पित करने का प्रयास किया है, उसमें जो भी त्रुटियाँ रह गई हैं वे सब मेरी ही हैं और यदि उसमें कुछ श्रेयस-सार तत्त्व उपलब्ध हो सके हैं तो वह महज उनकी ही असीम अनुकम्पा की फल प्राप्ति है।

इसमें मैं कहाँ तक कृत-कार्य हुआ हूँ, साथ ही यह सर्व साधारण के लिए कितना प्रेरणा प्रद, शुभ प्रद एव मगल प्रद होगा यह तो सुधि पाठक ही निर्णय करेंगे।

समवेत भाव से सश्रद्ध अनेकानेक प्रणाम।

ॐ शान्ति शन्ति शान्ति ।।

माणकचद रामपुरिया

प्रथम सर्ग

सुयश सदा वह पाता, करता
प्रभु का जो गुण-गान।
करते हैं हम शीश नवा
अरिहन्त चरण का ध्यान।।

सभी लोक औं सभी काल में
करता जो उद्धार
जाप उसी तीर्थंकर का मैं
करता बारम्बार।

पहला नृप औं' पहला त्यागी
तीर्थंकर गुणधाम
ऋषभ देव ही हैं जिनको मैं
करता सदा प्रणाम।

सूर्य सदृश जो सदा प्रकाशित
देते नित्यानन्द,
पूर्ण सृष्टि है जिसके निर्मल
दृष्टि-मात्र में बन्द।

जिनके केवल ज्ञान-मुकुट में
अगजग का प्रतिबिम्ब
उनकी स्तुति करता जिनका
नहीं दूसरा बिम्ब।

जिनके वचनामृत से प्राणी
भव के होते तृप्त
जिनके कारण ज्ञान विभा है
भू पर सदा प्रदीप्त।

जिनके उपदेशों का जग में
होता जय जय कार।
आदिनाथ उस तीर्थंकर को
नमो नम हर बार।

श्रद्धानत हूँ, करो जगत में
सब आनन्द प्रदान।
जिससे मानव मानव बनकर
होता पूज्य महान।।

देव-देवियाँ जिसका वन्दन
करके हैं परिपूर्ण।
केवल वही करेंगे मेरे
सकल मनोरथ पूर्ण।।

मन में ही हैं शत्रु हमारे
कर दो उनको दूर।
ऐसी किरण दिखाओ जिससे
मन होवे भरपूर।।

रहे न कोई द्वन्द्व हृदय में
रहे न कोई द्वेष।
किसी तरह के कलुष भाव का
रहे न कुछ अवशेष।।

बढ़े निरन्तर सात्विकता हो
मन जिससे समृद्ध।
चरण-शरण में हृदय लगाकर
हो जाऊँ मैं सिद्ध।।

पाऊँ सम्यक् निधियाँ सारी
साधक-साध अनन्त।
पाऊँ वह पद, कहते जिसको
जग में दुर्लभ सन्त।।

आर्तनाद, मैं निशिदित करता
करो तनिक कल्याण।
कुछ भी नहीं अदेय तुम्हारे
लिए कहीं भगवान।।

आदिनाथ जय ऋषभदेव की
महिमा अपरम्पार।
यही सृष्टि के कण-कण तक का
करते हैं उद्धार।।

दुष्टों पर भी दया दिखाते
देते सब को ज्ञान।
आदीश्वर तीर्थंकर सबका
करते हैं कल्याण।।

दुष्टों पर भी दया दिखाते
देते सब को ज्ञान।
आदीश्वर तीर्थंकर सबका
करते हैं कल्याण।।

इनका परम पवित्र चरित है
तम में दिव्य प्रकाश।
इनके अवगाहन से होता
भव का सदा विकास।।

आदिनाथ ने पहले जो भी
किये यहाँ भव पार।
उन्हें याद कर शीश नवाता
पद पर बारम्बार।।

मुझे शक्ति दो, करूँ तुम्हारा
वन्दन मैं अविराम।
ऋषभदेव आदीश्वर! मेरा
शत-शत नमन-प्रणाम।।

द्वितीय सर्ग

ऋषभ देव जब आये भू पर–
हुए सभी आनन्दित।
पुलक उठी धरती भी क्षण में–
होकर महिमा–मंडित।।

विहग विहँस कर लगे चहकने-
पवन सुरभि ले आया।
सूर्य-चन्द्र ने किरण-किरण से-
सात्विक रस बरसाया।।

मानवता के त्राता जग में-
आदिनाथ हैं आये।
मर्त्य भुवन में रस अमर्त्य ही-
सब के हित हैं लायें।।

मानव कैसे विकसित होकर
परम ज्ञान है पाते।
उनके उपदेशामृत सबको-
यही तत्व बतलाते।।

अपनी निर्मल ज्ञान विभा में-
सब को किया समाहित।
हृदय-हृदय में प्राणि मात्र-हित-
करुणा हुई प्रवाहित।।

जीव-मात्र को किया आत्मवत
उन्नति के अभिलाषी।
वचनामृत से तृप्त हुए सब
धरती रही न प्यासी।।

किन्तु यहाँ तक आने में भव
कितने पार किये थे।
कितने भव में कैसे-कैसे
भार-सम्भार लिये थे।।

यह अपने में सृष्टि-विभव की
जागृत एक निशानी।
इसी लीक पर सतत् प्रवाहित
भव की अमर कहानी।।

पहले भव की कथा पुरातन
निश्चल मन से गाता।
सार्थवाह धन ऋषभनाथ थे
धरती के, सुखदाता।।



जम्बुदीप के भरत खण्ड में
सार्थवाह धन आये।।
अपनी आत्मिक उन्नति के फिर
प्रथम चरण अपनाये।।

था वसन्तपुर नाम जहाँ
चलने को हुए रवाना
तीर्थाटन था, जगह-जगह पर
होता ठैर-ठिकाना।।

नगर-डगर के लाग आने को
जुटे वहाँ पर आकर।
चले सभी समवेत हुए-से
सात्विकता अपनाकर॥

धर्मघोष आचार्य वहाँ थे
उनके मन में आया।
चलूँ, जरा तीर्थाटन में ही
होगा कुछ मनभाया॥

सार्थवाह के साथ वहाँ से
चले हृदय बहलाते।
पच-सहस्त्र लिये मुनियों को
प्रभु का भजन सुनाते॥

मार्ग विकट था, विपिन कठिन था
फिर भी थे सब चलते।
थक कर ही सब रूक पाते थे
सूरज ढलते-ढलते॥

गर्मी बीती, वर्षा आई
घटा गगन में छाई।
ताप-तप्त धरती पर सहसा
हरियाली लहराई॥

तरु-तरु में नव सिहरन जागी
थिरक उठी पुरवाई।
धरती के कण-कण पर बिहँसी
वर्षा की तरुणाई।।

कौंध-कौंध कर लगी बिजलियाँ
चचल भाव जताने।
पर्वत के जल लगे उतकर
झर-झर गीत सुनाने।।

झूम-झूम कर लगे थिरकने
मोर विपिन में खुलकर।
शीतल शान्तिमयी बन आयी
धरती पूरी धुलकर।।

बूँद-बूँद जल झर-झर झरता
पथ था गीला-गीला।
ऐसे में स्वर मेंढक का भी
लगता बड़ा सुरीला।।

लेकिन मार्ग कठिन था इतना
कोई पार न पाता।
मेघों के गर्जन में कोई
कैसे वाहर जाता।।

एक गुफा में मुनिवर थे,सब
बाहर तम्बू ताने।
सब उदास से लगे वहाँ पर
क्षण-क्षण समय बिताने।।

सार्थवाह ने मन में सोचा
मुनिवर क्या हैं करते?
ग्लानि हृदय में आई हम सब
ध्यान न उनका धरते।

हाथ जोड कर किया निवेदन
क्षमा करें हे गुरुवर।
कर न सके हम महाराज की
सेवा भी तो क्षण भर।।

शान्त हृदय से गुरुवर बोले
तुम हो मन से सात्विक।
निश्चय समझो, सदा तुम्हारी
उन्नति होगी आत्मिक।।

धर्म-भाव में स्थित रहकर तुम
सबका मगल करते।
कभी किसी के लिए अमगल
का कुछ भाव न धरते।।

धर्म बड़ा उत्कृष्ट वस्तु है
सबका मंगल दाता।
धर्म-भाव ही कठिन घड़ी में
सबको राह दिखाता।।

ग्रहण करो आशीष, तुम्हारा
मंगल ही अब होगा।
तेरी आँखों के आगे अब
मंगलमय भव होगा।।

पुलकित होकर सार्थवाह ने
पग में शीश नवाया।
तत्क्षण 'सम्यक् ज्ञान' हृदय में
अनायास ही पाया।।

चलते-चलते फिर सब अपने
लक्ष्य धाम तक आये।
सार्थवाह ने मणि-माणिक तक
हँस-हँस खूब लुटाये।।

कुछ दिन रहकर सार्थवाह ने
आगे का भव पाया।
सम्यकता का बीज हृदय में
विटप-सदृश लहराया।।

तृतीय सर्ग

सम्यक ज्ञान प्राप्त कर अपना
काफी समय बिताकर।
सार्थवाह ने त्यागी अपनी
काया इस धरती पर।।

किन्तु हृदय में बीज सत्य का
मुनि ने जो था डाला।
वही रहा अन्तर में जागृत
था वह बडा निराला।।

बीज सत्य का पल भर को भी
जो अन्तर में आता।
उसकी आभा कभी न मिटती
दिन-दिन बढता जाता।।

समय प्राप्त कर अनायास यह
मन को जागृत करता।
जादू बनकर साधक के सिर
ज्योति ज्ञान की धरता।।

सार्थवाह ने अन्तरतर से
मुनि का जो व्रत पाला।
उसी बीज ने स्वय उभर कर
फैलाया उजियाला।।

लेकिन अपने पहले भव के
भाव सभी बिसराये।
यहाँ दूसरे भव में वे ही
स्वत सामने आये।।

हुए युगलिया रूप, नदी के
पावन सीता तट पर।
कुरुक्षेत्र के उत्तर पावन
जम्बु वृक्ष के ऊपर।।

कल्प वृक्ष थे वहाँ अनेकों
माया थी सब घेरे।
सार्थवाह के उसी जीव ने
दिए वहाँ पर फेरे।।

भूल गया, है उसे धरा का
कष्ट दु:ख सब हरना।
मानवता की खातिर उसको
योग-क्षेम था करना।।

जड़ता की इस घनी निशा में
राह बतानी होगी।
नयी ज्योति की विभा धरा पर
उसको लानी होगी।।

कल्पवृक्ष की छाया में सब
भोग भोगकर मन से।
सार्थवाह का जीव स्वय ही
ऊब गया जीवन से।।

उसके मन में बड़ा द्वन्द्व था
घिरा हुआ इस भू पर।
हुए देव सौधर्म लोक में
इस धरती से ऊपर।।

यही तीसरा भव था, उनका
देवलाक आराधक।
तत्पश्चात् पुन धरती पर
आये बनकर साधक।।

कितने काल वहाँ थे इसका
लेखा-जोखा क्या है।
ऐसे ही सत्पुरुष धरा को
देते ज्ञान नया है।।

निश्चित काल सभी का होता
यही प्रमाण सभी का।
नियम सृष्टि का यही सदा है
निर्मल ज्ञान सभी का।।

समय प्राप्तकर, सन्त पुरुष ही
अपना गीत सुनाकर।
महाकाल से जमी सृष्टि का
कल्मष धोते आकर।।

देव-लोक से कोई भू को
ज्ञान नहीं दे सकता।
इस धरती का कभी वहाँ से
ताप नहीं ले सकता।।

इसीलिए इस पुण्य धरा पर
देव स्वय ही आकर।
अपने सब आदर्श कर्म का
जाते राह बताकर।।

सार्थवाह का जीव वहाँ से
भूतल पर जब आया।
अपने शुभ कर्मों से क्षण-क्षण
विकसित मन कर पाया।।

तिमिर-ग्रस्त इस भूतल पर फिर
नयी किरण ले आये।
मूढ-ग्रस्त जड़ता के उर में
ज्ञान दीप मुस्काये।।

चतुर्थ सर्ग

स्वर्ग लोक से उतर धरा पर-
धन श्रेष्ठी का जीव बिहँसकर,
आया महा विदेह नगर में-
सुषमित-क्षण-आलोक प्रहर में,

शतबल नायक नृप की रानी-
शशिकान्ता थी भव-कल्याणी,
उस रानी के जीवन-तारक-
हुए महाबल नामक बालक,

बड़ा सुदर्शन रूप अनोखा-
सबने ही बालक में देखा,
बल भी था अतुलित उस तन में-
विद्युत ही थी उस यौवन में,

जो भी उसको कभी देखता-
उसका पौरुष भाग्य-लेखता,
चकित-थकित वह हो जाता था-
सारे गुण उसमें पाता था,

स्वय नृपति ने उसे देखकर-
अपना भाग्य सराहा जी भर
लगे सोचने-जीवन-यौवन-
भोग चुका मैं प्रतिपल-प्रतिक्षण,

अब आगे की राह बनाऊँ-
उन्नत साधन कुछ अपनाऊँ,
जीवन तो यह है क्षण-भगुर-
पशुवत्-सा करता है पागुर,

जैसे वृक्षों के कोटर में-
सर्पादि रहते हैं घर में
उसी तरह तो शत्रु यहाँ है-
हम सब बैठे आज जहाँ है

सारा ही तन रोग भरा है-
मन का घाव बड़ा गहरा है
देख न पाते ऊपर से हम-
भीतर केवल है गम-ही-गम

क्षण-क्षण इसका रीत रहा है-
सब कुछ ऐसे बीत रहा है
जैसे कोई वृक्ष टूट कर-
जड़ से गिरता है धरती पर

उसी तरह यह अपना तन भी-
नहीं रहेगा यह जीवन भी
काल स्वय ही देख रहा है-
उसकी निर्मम दृष्टि यहाँ है

मुझको अब वैराग चाहिए-
प्रभु से बस अनुराग चाहिए,
यही सोच कर राजा शतबल-
हुए हृदय से अतिशय चचल

तुरत महाबल को बुलवाया-
पुत्र योग्य था, तिलक सजाया,
राज-पाट सब उसको देकर-
प्रव्रज्या का सब व्रत लेकर,

धर्म-भाव से जीवन जीकर-
स्वर्ग-लोक में आये सत्वर,
पुण्य भरा था अन्तर-मन में
सौरभ-सा उत्फुल्ल सुमन में,

यहाँ महाबल शासन करने-
लगे, हृदय भावों से भरने,
सभी तरह सब जीव सुखी थी-
कोई क्षण भर नहीं दुखी थी,

स्वय महाबल सुख से रहने-
लगे सुखद भावों में बहने,
काम-भोग सब लगे भोगने-
कोई आया नहीं रोकने,

नृत्य और सगीत जहाँ थे-
कामाकुल उद्गीत जहाँ थे,
वहीं लीन रहते ये नृप वर-
भोग तृप्ति में ही थे तत्पर,

आकण्ठ मग्न वे रहे मोह में-
कामुकता के नग्न छोर में
सहसा स्वयंबुद्ध मन्त्री ने-
कहा-कहाँ आये हैं जी ने,

यहाँ कौन ऐसे जीता है?
गँदला जल कोई पीता है?
कामुकता में समय गँवाना-
व्यर्थ हुआ यह जीवन पाना।

इसका कोई अन्त नहीं है-
यह जीवन-पर्यन्त नहीं है,
क्षण भर इसका साथ मिला है-
क्षण भर को यह सुमन खिला है।

इसमें शाश्वत चाह नहीं है-
उन्नति की यह राह नहीं है,
कुछ दिन में सब मिट जायेगा-
कोई पास नहीं आयेगा।

पत्र-पत्र जब लगते चू ने-
कौन वृक्ष को आता छू ने
यह सब ऐसे ही रह जाता-
कोई शाश्वत शान्ति न पाता।

विषयासक्ति सदा अस्थिर है–
महाकाल का गहन तिमिर है,
इससे बचना सदा श्रेय है–
आत्मोन्नति ही सदा प्रेय है।

राजन! इसे छोड़ अब आयें–
आत्मिक उन्नति–पथ अपनायें,
गुरु की भक्ति हृदय में भर लें–
धन्य–धन्य यह जीवन कर लें,

दुर्व्यसनों की आग न मन में
धधके कामुकता जीवन में,
जीवन का उत्कर्ष वहाँ है–
परम शान्ति चिर–हर्ष जहाँ है।

स्वयबुद्ध की बात श्रवण कर–
क्षुब्ध हुए कुछ अन्य मन्त्रिवर।
वे अनात्मवादी स्वर में ही–
कहा कि जीवन है बस ये ही।

भौतिकता का राग सुनाया–
मिथ्या को ही सत्य बताया,
सुना महाबल ने भी उनको–
देखा लौकिकता के गुण को,

जमी नहीं पर बात हृदय में-
कामुकता के नग्न निलय में,
सोचा स्वयबुद्ध निर्मल है-
उसकी बातों में ही बल है,

तत्क्षण राज्य पुत्र को देकर-
गुरु से सात्विक दिक्षा लेकर,
ग्रहण किया यति-धर्म-परायण-
जीवन उन्नति का शुभ सायण।

व्रत उपवास अनेकों कर के-
हुए मनुज नव जीवन धर के,
काल-धर्म सब प्राप्त हुआ था-
सात्विक-तप परिव्याप्त हुआ था

कालान्तर के काल स्वल्प में-
देव-लोक ईशान कल्प में
आत्मिक बल आदर्श छुआ था-
वही देव ललितांग हुआ था।

पचम सर्ग

अपनी पुण्य प्रभा के आश्रित–
देव बना ललिताग
लगा भोगने क्षण भर में ही–
देवों का सब स्वाग।

आँख खुली तो लगे देखने-
सुख-साभार अशेष,
भोग भोगने के असीम क्षण
जीवन के उन्मेष।

देव सभी सम्मान प्रदर्शित-
करते थे अविराम,
सुख के साधन बिछे हुए थे-
हर क्षण आठों याम।

चकित हुआ ललितांग कि ऐसा-
कैसा यह संयोग
कैसे मुझे मिला है अविरल
जीवन में यह भोग।

ऐसी विभा अकंपित, जिसका-
इतना दिव्य प्रकाश,
आज मुझे लगता है अपना-
नया-नया इतिहास।

इसी सोच में चिंतित थे, यह
कैसा शुभ्र प्रभात,
कदम-कदम पर खिले दीखते
जीवन के जलजात।

सहसा प्रतिहार आ बोला-
क्षमा करें हे देव,
पुण्य कर्म से यहाँ आपने-
पाया इसे स्वमेव।

देवलोक है, जो चाहेंगे-
होगा तत्क्षण प्राप्त!
यहाँ आपका ही शासन है
कण-कण तक पर व्याप्त।

शुभ क्षण में ललितांग देव का-
हुआ वहाँ अभिषेक,
वन्दन-अर्चन करने आये
सम्मुख देव अनेक।

स्वस्ति वचन सब से ही कह कर-
होकर भाव विभोर,
बढ आये ललितांग देव फिर-
नृत्य कक्ष की ओर।

परम सुन्दरी स्वयं प्रभा थी-
वहाँ नृत्य में लीन,
उसे देखकर, अनायास हो
आये मुग्ध प्रवीण।

उसके हाथों को धर कर फिर–
किया प्रेम अभिव्यक्त,
सभी तरह से हुए अचानक–
उसमें नृप आसक्त।

हर क्षण विषयासक्त बने वे–
भूले प्रभु का ध्यान
स्वय प्रभा का कुछ दिन में ही–
हुआ वहाँ अवसान।

फिर तो नृप ललिताग देव भी–
हुए वरिह में लीन
विरह–विकल से स्वय प्रभा की–
छवि में हो तल्लीन।

हर क्षण उनके अन्तर तर में–
रहती उसकी याद
कोई काम न कर पाते थे–
लगता अमिट विषाद।

टूट गये भीतर से इतना–
मन में था वह खेद
विरह–बाण रह–रह कर उनके–
मन को जाता भेद।

स्वयबुद्धि ने भी उस क्षण ही-
पाया था वह लोक,
उसने देखा व्याकुल नृप के-
मन का सारा शोक।

तत्क्षण आकर कहा कि राजन!
क्यों व्याकुल है आप,
विचलित क्यों कर रहा आपको-
विरहानल का ताप।

स्वय प्रभा फिर मिल जायेगी-
आप करें विश्वास,
साधारण प्राणी के जैसा-
मत छोड़े उच्छ्वास।

कुछ दिन ही है भोग यहाँ का-
फिर हम होंगे दूर,
आप न समझें, ऐसे इतना-
अपने को मजबूर।

स्वयबुद्ध ने कहा कि भू पर-
नन्दी ग्राम के पास,
स्वय प्रभा जन्मी है पाकर-
निर्धन का आवास।

निर्धन है श्रम से ही अपना–
जीवन करती पार
जाओ पास उसके, होगा–
उसका भी उद्धार।

वह अनामिका है धरती पर–
तुम में हो आसक्त,
देह त्याग कर आ जायेगी –
तुम में हो अनुरक्त।

चले विकल ललितांग वहाँ से–
लिया शीघ्र ही देख,
उस अनामिका में थी छिटकी–
स्वयं प्रभा की रेख।

हुई शीघ्र आकर्षित अपनी–
देह शीघ्र ही त्याग,
रोम–रोम में जाग रहा था–
प्रियतम का अनुराग।

देव–लोक में रह करे फिर तो–
भोगे सारे भोग
लेकिन इसकी भी थी सीमा–
यह भी था संयोग।

शनै-शनै ललितांग देव का-
समय हुआ जब क्षीण,
उद्यत थे भू पर आने को-
अपने कर्माधीन।

एक दिवस यह आयु पूर्ण कर-
लिया जन्म अभिराम,
पूर्व-विदेह-नगर में भू पर-
वज्रजंघ था नाम।

राज्य-विभव में लीन रहे वे-
शाश्वत शान्ति प्रवीण रहे वे,
शान्त भाव से सब कहते थे-
शुद्ध बुद्धि में नित रहते थे।

इसी काल में स्वय प्रभा भी-
भू पर जन्मी दिव्य विभा-सी,
पुण्डरीक-नृप बज्रसेन-घर-
अतुल विभा-सौन्दर्य-सुधाकर,

अनुपम थी सुषमा मन-भावन-
नाम पड़ा श्री मती सुहावन,
दिन-दिन बढ्ने वाली धरा पर-
जैसे नभ में शीतल शशिधर,

एक दिवस देखा अम्बर में-
देवोपम छवि दिव्य प्रहर में,
देवों का कलरव होता था-
सौरभ कलि का मुँह धोता था,

सहसा याद हुआ पूर्वापर-
भव की सारी कथा मनोहर,
सुन्दर नगरी थी उस भव की-
अनुपम छवि ललिताग देव की

फिर तो उनके विरह-ताप में-
    लगी सुलगने स्वयं आप में,
कभी किसी को नहीं वरूँगी-
    जीवन भर अब मौन धरूँगी,

यही किया अन्तर में निश्चय-
    रहे सदा प्रण मेरा अक्षय
याद सभी कुछ करके उनका-
    चित्र बनाया अनुपम गुण का,

रानी की सह-चोली पल में-
    लिया चित्र उस राज महल में,
लेकर उसको चली नगर में-
    देखूँ है यह कौन शहर में,

जहाँ कहीं ललितांग मिलेगा-
    इसे देखकर पहचानेगा,
यही विचार हृदय में भर कर-
    आई राजमहल के बाहर,

कितने उसके सम्मुख आये-
    लेकर कुछ पहचान न पाये,
कोई हँसता-इठलाता था-
    चित्र देख कर मुस्काता था,

कोई कहता दृश्य सुघड है-
नृप-सा, दिखता बडा निडर है,
नहीं किसी ने पर पहचाना-
कैसी है अभिव्यक्ति न जाना,

वज्र जघ ने भी फिर आकर-
देखा अनुपम चित्र शुभकर,
सहसा याद किया अपने को-
देख रहे हो ज्यों सपने को,

सहसा सब कुछ दृग में आया-
देव लोक था सम्मुख छाया,
दिव्य चित्र में स्वय प्रभा थी-
मादक-क्षण की दिव्य विभा थी।

मूर्छा में आकर घबड़ाये-
अपने को स्वस्थ बनाये,
कहा कि कोई मुझे बताओ-
स्वय प्रभा है कहाँ दिखाओ।

लगे चीखने औं चिल्लाने-
देव लोक का भाव बताने,
अबला बोली-धैर्य न खोवें-
इतना अधिक अधीर न होवें।

इसी आस में स्वय प्रभा है-
आप मिलेंगे उसे पता है,
अब तक थी अज्ञात खुशी से-
पड़ी रही कुछ दूर इसी से।

किन्तु पता अव मिल पाया है-
समझें, अवसर शुभ आया है,
आयेगा अब शीघ्र मिलन-क्षण-
होगा सुखमय सारा जीवन।

अबला फिर ले गयी वहाँ पर-
बैठी थी श्री मती जहाँ पर,
दोनों ने दृग मृदुल उठाकर-
देखा स्नेहिल भाव जगाकर।

बज्रजघ ने व्याह रचाया-
जीवन को आदर्श बनाया
एक डोर में दोनों बँधकर-
भोगा सुख से जीवन सुन्दर।

कुछ दिन के ही बाद अजाने-
आये मन में भाव सुहाने
स्वय नृपति के मन में आया-
राजपाट है भीषण माया।

स्वर्णजघ ने समय प्राप्त कर-
दीक्षा ले ली गुरु से सत्वर,
बज्रजघ को राज्य सौंप कर-
चले उच्चतर जीवन-पथ पर।

बज्रजघ ने काल बिता कर-
सोचा क्या हे राज चला कर?
इससे सच्ची शान्ति न मिलती-
मन की कलिका कभी न खिलती।

गुरुवर के ही पास चलूँगा-
आशीर्वाद उन्ही का लूँगा,
राज-पुत्र को तुरत सौंप कर-
जाऊँगा मैं मगल-पथ पर।

यही सोच कर घनी निशा में-
आये सोने शयन दिशा में,
इधार पुत्र इनका ललचाया-
घातक कुछ षड्यन्त्र रचाया।

राजमहल में घिरा अँधेरा-
फैला विष-धूपों का घेरा,
राजा-रानी मरे वहीं पर-
शयन कक्ष में ही धरती पर।

कितना स्वार्थी जग होता है-
अपना पुत्र पिता खोता है,
वज्रजघ-श्री मती वहीं, से-
हुए युगलिया रूप यहीं से।

यही सातवाँ भव था उनका-
जीवन के सात्विक उद्भव व
यहाँ काटकर पिछला बन्धन-
जड़ जीवनका निर्मम क्रन्दन।

हुए आठवें भव में तत्पर-
देव-लोक सौधर्म दिवाकर,
भोग यहाँ आयुष्य मनोहर-
नौवें भव में फिर इस भू पर।

आये जीवानन्द वैध बन-
श्रद्धामय जीवन था-पावन
मिला यहाँ से-आगे का पथ-
तप सीकर से लथपथ।

सप्तम सर्ग

बज्रजघ का जीव धरा पर-
क्षेत्र विदेह पधारा
नौवें भव में आकर उसने-
अपना रूप सवारा।

सुविधि नाम था पूज्य पिता का
वैदक के थे ज्ञाता
शुभ कर्मों में लीन सदा ही-
दुखियों के थे त्राता।

पुत्र हुआ जब उनके घर में
पूरा हर्ष मनाया
दीनों के हित अन्न-वस्त्र तक
भर-भर हाथ लुटाया।

उसी समय उस पुण्य नगर में-
चार और सुत जन्मे,
मर कर खुद श्री मती स्वय भी-
जन्मी थी उस क्षण में।

जीवानन्द साथ सब रहते-
सुख से समय बिताते,
एक पुष्प के छ पत्रों से-
मनहर शोभा पाते।

साथ-साथ सब सदा विचरते-
सब की सेवा करते
ईर्ष्या-द्वेष-कलुष की कोई-
बात न मन में धरते।

एक-दूसरे सब अभिन्न थे-
सब में था अपनापन
एक सूत्र में मनका जैसे-
उनका था यह जीवन।

एक दिवस राजर्षि तपस्वी-
स्वय गुणाकर आये,
भिक्षाटन था शुभ प्रयोजन-
फिर भी थे सकुचाये

उनका तन था कुष्ठ रोग से-
विगलित क्षण-क्षण तापित,
लगता जैसे कठिन भाग्य से-
पूरा था अभिशापित।

बाल-वृन्द के मन में सहसा-
दया उभर कर आई,
औषधि ला उपचार हेतु फिर-
नयी युक्ति अपनाई।

ले चदन गोशीर्ष बदन पर-
शीतल लेप लगाया,
पुन रत्न कम्बल से ढक कर-
तन का ताप मिटाया।

किया कठिन उपचार कि जिससे-
मुनिवर ने सुख पाया,
रोग-मुक्त हो वदन सुहाना
सुन्दरतम बन आया।

जहाँ कहीं दुख दिखता उनको-
मिल जुल कर सब जाते;
दुखियों का सब कष्ट द्रवित हो
क्षण में तुरत मिटाते।

उनके यश का केतु दूर तक-
नगर-नगर फहराया,
जो भी पास पधारा, उसने
जीवन का सुख पाया।

इन षट मित्रों ने अपने को-
तप-साधन में रख कर
पुण्य किया सब अर्जित सुखमय-
सात्विकता से भू पर।

भ्रमर-वृति के शुभ योग से-
भिक्षाटन करते थे
जो आहार उन्हें मिल जाता-
उसे ग्रहण करते थे।

धैर्य हृदय में धारण करके–
सब संकट सहते थे,
कभी किसी को कष्ट न होवे–
यही बात कहते थे।

अन्त समय में अपनेपन का–
भाव हृदय में त्यागा,
सन्थारा उपवास किया,औ
दिव्य ज्ञान फिर जागा।

आयुष अपना पूर्ण बिताकर–
देव–लोक में आये,
अच्युत कल्प विमान सजाकर
सामानिक पद पाये।

तरह–तरह के भोग यहाँ पर–
देवोपम अपनाये,
ऋद्धि–सिद्धि के साथ अनेकों
सुख–सुविधा सब पाये।

यह था इनका दसवाँ भव ही–
देव–लोक के क्षण का,
सभी तरह परिपूर्ण रहा यह–
जीवन के साधन का।

देव-लोक की आयु पूर्ण कर-
ही अवसान हुआ था,
दसवें भव से आगे का फिर-
नव प्रस्थान हुआ था।

अष्ठम सर्ग

पुण्डरीक नगर में सुन्दर-
वज्रसेन विख्यात,
नृपति हुए ऐसे, जैसे हो
पुष्पों में जलपात।

इनकी प्रिया धारिणी धीरा–
मन से थी गम्भीर,
क्रमश उसके हुए पाँच सुत–
सभी तरह से वीर।

उनमें जीवानन्द वैध का–
जीव प्रथम था मान,
उससे बढ़ता रहा निरन्तर–
भूतल का सम्मान।

बज्रनाभ था नाम निरतर–
देता सबको हर्ष,
सभी तरह पालन करता था–
अर्हत् का आदर्श।

इनके जन्म–ग्रहण के पहले–
जननी को था ध्यान,
चौदह स्वप्न दिखे थे उनको–
अनुपम अतुल महान।

सभी पुत्र अब मित्र बने से–
हर क्षण रहते साथ,
एक दूसरे के कामों में–
सभी बँटाते हाथ।

क्रमश बड़े हुए सब भोले-
भा-ले राजकुमार,
सबको देने लगे अजाने
क्षण-क्षण हर्ष अपार।

राजनीति औ धर्म-नीति का-
करते सब अभ्यास,
अपने कामों के प्रति उनको-
मन में था विश्वास।

उसी समय लोकांतिक देवों-
ने भी देकर मान,
कहा कि राजन तीर्थ करें अब-
होगा सब उत्थान।

वज्रसेन ने वज्रनाभ को-
दिया राज्य का भार,
और किया प्रारम्भ वहीं से-
तीर्थाटन-सम्भार।

वज्रनाभ ने इधर दान से-
सबको कर सतृप्त,
स्वय ग्रहण की दीक्षा, होकर-
ज्ञान-विभा-सदीप्त।

ज्ञान-दीप से देखा उनके-
पिता स्वय भगवान्,
देकर सबको करते निश्चित-
शाश्वत ज्ञान प्रदान।

उसी समय नृप बज्रनाभ ने-
देखा था साक्षात,
चक्ररत्न ने किया प्रवेशन-
निर्मल औ अवदात।

खुशी चतुर्दिक फैली, मन का-
मिटा सकल अवसाद
उन्हें स्वत ही प्राप्त हुआ था-
प्रभु का आशीर्वाद।

चक्रीश्वर की पदवी पाकर-
राजाओं में श्रेष्ठ,
बज्रनाभ थे सभी तरह से-
अपने गुण में ज्येष्ठ।

बड़ी कुशलता से शासन में-
रक्खा था अनुराग,
राज-धर्म के साथ हृदय में-
जागा विरति-विराग।

नवम् सर्ग

त्रिभुवन तारक तीर्थंकर प्रभु-
बज्रसेन भगवान् ,
निकले विचरण करने, करते-
जन-जन का कल्याण।

वज्रनाभ के विशद राज्य में
होकर के आसीन,
धर्म-देशना की उपवन में
देकर ज्ञान नवीन।

वज्रनाभ ने सुना कि आये-
तीर्थंकर अभिराम,
चला छोड़ कर अपना सारा
राज पाट का काम।

प्रभु की चरण-शरण में आया-
लेकर सब परिवार,
विह्वाकुल हो बैठा मन में
लेकर हर्ष अपार।

किया भाव से प्रभु का वन्दन-
भर दृग में हर्ष,
चिन्तन था, बस, अर्हत् वाणी-
केवल है आदर्श।

कदम-कदम पर बाधा संकट
दुस्तर है संसार,
गहन तिमिर से त्रिभुवन-पति ही
कर सकते हैं पार।

कितने रोग शरीर-कुञ्ज में-
करते हैं आवास,
इन्हें मिटाने को करना है-
मुझको विमल प्रयास।

ऐसे प्रभु हैं मिले; किन्तु मैं-
भीतर से हूँ म्लान।
मुझे राह बतला सकते हैं-
तीर्थंकर भगवान्।

चक्रेश्वर ने प्रभु के आगे-
तुरत झुकाया शीश,
कहा कि प्रभु का मुझे चाहिए
अब केवल आशीष।

पुत्र आपका होकर भी मैं-
भटक रहा भगवान,
सही न जाती भौतिक व्याधी
करें तनिक कल्याण।

राज्य दिया जो उसका पालन-
किया सदा चुपचाप,
फिर भी मुझे सताता रहता-
भौतिकता का ताप।

मुझे दीजिए दीक्षा, जिससे–
होवे अब कल्याण,
दया करें हे पूज्य पिता–श्री–
तीर्थंकर भगवान्।

बज्रनाभ के सब कुटुम्ब ने–
अपनायी यह राह,
सबके मन में जागी सहसा–
अमर ज्ञान की चाह।

बज्रनाभ को स्वल्प समय में–
मिला अनश्वर ज्ञान,
बारह अगों के ज्ञाता थे–
सारे बन्धु समान।

हुई अचानक सकल लब्धियाँ–
क्षण भर में ही प्राप्त,
सभी पदों को सुलभ बनाकर–
हुए स्वय सब आप्त।

प्राप्त जगत में करना कुछ भी–
रहा न उनको शेष,
सब कुछ पाकर स्वय सिद्ध सब–
क्षण में बने अशेष।

हुआ पूर्ण होने को आयुष-
जगा भविष्यत् ध्यान,
अब तो उनका जीव शुद्ध था-
उज्ज्वल और महान।

ग्यारह भव पूरा कर आये-
पूर्ण सिद्धि के धाम,
विमल अनुत्तर वैमानिक में-
देव बने अभिराम।

बारहवें भव में तो ये थे-
अपने पद में लीन,
अर्हद-पद-आदर्श-नियामक-
प्रभु में ही लवलीन।

तेरहवें भव में ये ही थे-
ऋषभ देव भगवान्
आये करने इस धरती पर
जन-जन का कल्याण।

दशम् सर्ग

वज्रनाभ की जय हो जिनका-
निर्मल अन्तर-जीव
ऋषभ देव बन भू पर आये-
करुणा-मूर्ति सजीव।

बारह भव तक अपनेपन का–
करते हुए विकास,
माटी के तन में भर लाये–
पावन दिव्य प्रकाश।

धरा शान्त थी, गगन शान्त था–
सजकर निर्मल साज,
बिहँस रहा था इस धरती के–
कण–कण पर ऋतुराज।

फूल खिले थे, डाल–डाल पर–
भ्रमरों का था गान,
अमराई में कूज रही थी–
कोयलिया की तान।

दिशा–दिशा हर निशा–प्रात में–
मादकता थी व्याप्त,
लगता जैसे कलुष हुआ है–
भू का स्वत–समाप्त।

दृष्टि जहाँ तक जाती लगता–
सुषमा का है जाल,
सभी तरह से खिली हुई थी–
धरती भव्य विशाल।

चटक रहे थे विहग वृक्ष के-
कोटर में निष्णात,
मचा रहे थे उनके शावक-
बगिया में उत्पात।

जगह-जगह पर लता-कुञ्ज में-
करते सब कल्लोल,
सन्-सन् करता पवन श्रवण में-
मधुरस देता घोल।

गुन-गुन करते भौंरे कलियों-
के दल पर अवदात,
सर-सरिता में झूम रहे थे
खुल-खिल कर जलजात।

वृक्ष-वृक्ष के पत्र पुराने-
झरते थे चुपचाप,
दिग्-दिगन्त तक कामदेव का-
छाया पुण्य प्रताप।

निकल रहे थे कोमल-पत्ते-
तरु-तरु में हर ओर,
लेती थी रह-रह कर धरती-
मादक मुग्ध हिलोर।

प्रकृति सुहानी दिखती लिखती-
कोई शुभ आ ख्यान,
कहीं नहीं ब्रह्माण्ड अखिल में-
उसका था उपमान।

ऐसे ही क्षण वज्रनाभ का-
जीव अतीव अशेष,
मरुदेवा के पुण्य गर्भ में
आकर किया प्रवेश।

नाभि विमल कुलकर की पत्नी-
होकर सद्य स्नात्,
देखे चौदह स्वप्न अचानक-
पुलकित हो उस रात।

सुख से हो अभिभूत अधर पर-
थिरकी नव मुस्कान
लगा कि अब आयेंगे निश्चय-
उसके घर भगवान्।

मन-ही-मन फिर थिरक-थिरक कर-
लगी सुनाने गीत
मानो साध रही हो मन-से-
स्वागत का संगीत।

थिरक-थिरक कर लगी बिछाने-
धरती पुष्प-प्रवाल,
शीतल पवन-सुगन्ध भरा था-
प्रतिक्षण मधुर सुकाल।

एकादश सर्ग

हर्ष-पुलक भर मरूदेवा ने-
कहा नाभि कुलकर से
दिखें मुझे हैं स्वप्न रात में-
पुण्योदय के वर से।

एक-एक कर उन्हें बताये-
सपने चौदह अपने,
इसमें कोई अर्थ छिपा है-
या हैं कोरे सपने।

सहज बुद्धि से कुलकर ने तब-
इनको तनिक विचारा,
बोले-तुमको पुत्र मिलेगा-
दुनिया भर से न्यारा।

होगा वह धरती का स्वामी-
कुलकर दिव्य सभी से,
दिखता है उसका शुभ लक्षण-
रानी आज अभी से।



उसी समय इन्द्रों ने देखा-
उनका डोला आसन,
अवधि ज्ञान से लगे सोचने-
क्या है इसका कारण।

देखा, भू पर नई किरण की-
आभा उतर रही है
दिव्य प्रभा में कहीं लेश भर-
कोई धुआँ नहीं है।

सभी वहाँ से मरुदेवा के-
पास विनय से आये,
उनके सारे स्वप्नों का फिर-
सच्चा अर्थ बताये।

बोले- पहले वृषभ दिखा जो-
धर्म-रूप रथ मानो,
पुत्र-रत्न लोकोत्तम होगा-
ऐसा ही पहचानो।

फिर देखा था हाथी, जिसका-
फल महान ही होगा,
बल-विवेक में पुत्र तुम्हारा-
गुरु समान ही होगा।

देखा था फिर सिंह, उसी-सा-
पुत्र रहेगा निर्भय,
शूर-वीर उस पराक्रमी में
शक्ति रहेगी अक्षय।

चौथे में थी लक्ष्मी, जो है-
शक्ति सृष्टि की सारी,
होगा पुत्र जगत का अधिपति-
सन्त-तपस्वी भारी।

पचम् दिखी पुष्पमाला थी–
जिसका था शुभ–दर्शन,
शिरोधार्य सब सदा करेंगे–
उसका ही अनुशासन।

छट्ठे में था चन्द्र सुदर्शन–
शीतल और मनोहर,
आनन्दमूर्ति ही पुत्र तुम्हारा
होगा सब से सुन्दर।

सप्तम् में था सूर्य ज्ञान की–
ज्योति दिखाने वाला,
होगा पुत्र, जगत को तम से–
बाहर लानेवाला।

अष्टम् में था केतु, गगन में–
जो अविरल फहराता,
महायशस्वी पुत्र तुम्हारी–
गोदी में है आता।

नौवें में था पूर्ण कलश जो–
शाश्वत तथ्य कहेगा
सभी तरह परिपूर्ण धरा पर–
ज्ञानी पुत्र रहेगा।

दसवें में था पद्म सरोवर-
सभी तरह सुख-दायक,
धोकर पाप सृष्टि का होगा
पुत्र तुम्हारा नायक।

ग्यारह में था, सागर-दर्शन-
सयम जिसका तीर,
पुत्र तुम्हारा सदा रहेगा-
धीर-वीर-गभीर।

था विमान बारहवाँ, जिससे-
सात्विक भाव भरेंगे,
सब वैमानिक देव पुत्र की-
सेवा खूब करेंगे।

दर्शन रत्नों का तेरहवाँ-
सारा ज्ञान भरा है,
सकल ज्ञान औ' आत्म-सिद्धि का-
सब भण्डार भरा है।

अग्नि विपुल निर्धूम स्वप्न जो-
चौदहवाँ है जगता
महापुरुष है पुत्र तुम्हारा-
सत्य यही है लगता,

सब इन्द्रों की बात श्रवण कर-
मरुदेवा थी पुलकित,
लगा कि सचमुच आज हुई वह-
नई विभा से मंडित।

इन्द्र देव सब चले वहाँ से-
अपने धाम पधारे,
गूँज रहे थे उनके मन में-
अर्हत् के स्वर न्यारे।

द्वादश सर्ग

नभ में जागा सूर्य, धरा पर-
नयी रोशनी आई,
मुकुल-फूल औ' पल्लव-दल पर-
किरण-किरण लहराई।

हवा सरक कर लगी थिरकने-
तरू पर शीतल-शीतल,
स्वर्ण विभा से लगा दमकने-
अम्बर औ' अवनी तल।

चह-चह चिड़िया चहक उठी, स्वर-
भौरों का लहराया,
कलि-कलि ने दल के दल कोमल-
घूँघट को सरकाया।

विहँसे सुमन नयन में छाई-
नयी-नयी अरुणाई,
रस से बेबस फुनगी-फुनगी-
अलि-अवलि घिर आई।

अन्तर में गुदगुदी उठी कुछ-
मन-मानस लहराया-
इन्द्रराज ने सपनों का फल-
ऐसा था बतलाया।

मरूदेवा थी बड़ी प्रफुल्लित-
सपनों की सुन बातें,
दिन लगते थे चाँदी जैसे-
सोने-सी थी रातें।

तरह-तरह की नयी कल्पना-
करने लगी हृदय में,
अब तो प्रभु आयेंगे मेरी-
निर्मल गोद-निलय में।

कुछ भी पाना शेष न होगा-
होगा पूर्ण मनोरथ,
कितना सुखमय बन जायेगा-
मेरे जीवन का पथ।

उस माता ने बढ़कर जग में-
कौन सुखी है बाला,
जगन्नियता जिसकी गोदी-
में हो आने वाला।

पुलक-पुलक जन लगा बिहँसकर-
होने पीला-पीला,
मातृ-रूप सहसा हो आया-
पल-पल परम सजीला।

जिधर देखती सृष्टि सलोनी-
लगती थी मुस्काती
फुनगी-फुनगी तरुवर की थी-
शोभा से लहराती।

प्रभु-मुख के दर्शन करने की-
मन में यही पिपासा,
मेरे पय का पान करें प्रभु-
माता की थी आशा।

जैसे-जैसे दिन थे चढ़ते-
शोभा बढ़ती आई,
राज्य-पिता का बढ़ा, महल में-
श्री-सम्पति अधिकाई।

पृथ्वी में-ज्यों अंकुर तरु का-
नित-नित बढ़ता जाता,
प्रभु का गर्भ उदर में वैसे-
ही था शोभा पाता।

हिम युत जैसे वारि धरा का-
हो जाता है शीतल
प्रभु के आने के प्रभाव से
हुआ प्रफुल्लित पल-पल।

वर्षा के आने से जैसे-
धरती हर्षित होती
मरुदेवा भी हर्षित होकर-
गर्भ भार थी ढोती।

सब कुछ था अनुकूल धरित्री-
सुख से थी इठलाती,
ऊषा की किरणों से भू पर-
नयी विभा छा जाती।

रजनी में भी तारावलियाँ-
क्षण-क्षण थी मुस्काती,
मुग्ध चकोरी अनायास ही-
चन्द्र-किरण पा जाती।

मरुदेवा थी मग्न हृदय से-
प्रभु में ध्यान लगाये,
धरती का उद्धारक जल्दी-
गोदी में अब आये।

त्रयोदश सर्ग

चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की-
श्रेष्ठ अष्टमी आई
सभी ग्रहों ने ऊँचे पद पर-
अपनी सभा जुटाई।

चलने लगी बयार सुरभिमय-
आसमान मुसकाया,
नैसर्गिक सौन्दर्य धरा के-
कण-कण पर लहराया।

दिशा-दिशा में नयी विभा की-
सुन्दरता थी जागी,
बिहँस उठी थी स्वय चतुर्दिक-
आभा नव अनुरागी।

पशु-पक्षी की सहज प्रकृति भी-
रागमयी बन आई,
सहज स्वभाव मनुज का जागा-
मानवता मुस्काई।

ऐसे में ही आदिनाथ का-
जन्म हुआ इस भू पर,
मरुदेवा की गोदी में ही-
आये प्रभु आदिश्वर।

एक यमज को जन्म दिया था-
मरुदेवा ने सुख से,
बिखर रही थी अद्भुत आभा-
उन दोनों के मुख से।

पाकर के ऐश्वर्य अलौकिक-
पुलक उठी थी माता,
जाग उठा सौभाग्य, गोद में-
बालक था मुस्काता।

सुरभित जल की अविरल वर्षा-
होने लगी वहाँ पर,
महक उठा भू मडल सारा-
दिव्य गध से भर कर।

देवों की दुन्दुभी मेह-सी-
बजने लगी गगन में,
तीन लोक की आभा मानो-
फैली निखिल भुवन में।

देव-गणों के लगे सिहासन-
कम्पित होने क्षण-क्षण
आदिनाथ आये हैं भू पर-
करना है अभिवादन।

दिशा-दिशा की दिक-कुमारियाँ-
आई मोद मनाती
प्रभु-प्रसूति का-घर में तत्क्षण-
मनहर गीत सुनाती।

नत-मस्तक हो मरुदेवा की-
सब प्रदक्षिणा करके,
अपना परिचय दिया सभी ने-
प्रभु चरणों को धर के।

बोलीं फिर-हम अवधि ज्ञान से-
जान रहे को आये,
स्वय जिनेश्वर प्रभु को हमने-
आज यहाँ हैं पाये।

परम सुवासित जल का छिड़कन-
शुभ मस्तक पर करके
चँवर डुलाया नव बालक पर-
गोदी में फिर ले के।

उत्तर-दक्षिण-पूरव-पश्चिम-
सभी दिशा से आकर
दीप जला घर-बार सजाया-
मगल राग सुनाकर।

शौच-कर्म सब किया सभी ने-
चदन-लेप लगा के,
आशीर्वाद दिया बालक को-
मगल स्वर में गा के।

मरुदेवा को सिंहासन पर-
सबने किया प्रतिष्ठित,
गोदी में बैठाकर प्रभु को-
गाये गीत समन्वित।

उबटन और प्रक्षालन करके-
प्रभु को खूब सजाया,
वस्त्राभूषण तरह-तरह के-
लाकर था पहराया।

परम दिव्य सौभाग्यवती थी-
मरुदेवा इस भू पर,
गोदी में ही विहँस रहे थे-
आज स्वयं अखिलेश्वर।

गंध-सुगंध सजाकर सबने-
हवन किया उस घर में,
प्रभु का पूजन-अर्चन वंदन-
किया मनोहार स्वर में।

मरुदेवा थी मुग्ध कि उसने-
सब कुछ ही था पाया
प्रभु को गोद उठा उसने तो
भू का भाग्य जगाया।

कुछ भी शेष नहीं था उसको-
जीवन में अब पाना,
देख रही थी प्रभु का केवल
अधर युगल मुस्काना।

चतुर्दश सर्ग

जब जन्म हुआ आदीश्वर का,
भू के उद्धारक भास्वर का,
तब कण-कण का उत्कर्ष हुआ,
परिव्याप्त भुवन में हर्ष हुआ,

सब ओर महा आनन्द रहा
जीवन का सुखमय छन्द रहा,
सब दिक्-कुमारियों ने आकर के,
सब गीत सुमगल गा-गा के,

सब शौच-कर्म या किया वहाँ,
था आदिनाथ का जन्म जहाँ,
सब देवों के विचलित आसन-
थे लगे वहाँ होने क्षण-क्षण,

रह पाये कोई धीर नहीं-
था हर्ष अपरिमित पीर नहीं,
सब आदिनाथ की माता की-
विनती की थी जग-त्राता की,

फिर प्रदक्षिणा उनकी कर के-
सब पुण्य-भाव से ही भर के,
जन्मोत्सव खूब मनाया था-
खुशियों का गीत सुनाया था

गोदी में उन्हें उठा कर के-
अन्तर की विनय सुना कर के,
मरुदेवा को निद्रा दे के-
खुद इन्द्र चले प्रभु को ले के

सब मेरु शिखर पर आते हैं-
देवों को वहीं बुलाते हैं,
सब ओर वहाँ रस-राग जगा-
भूतल का सोया भाग जगा,

वह उत्सव बड़ा अलौकिक था-
कुछ नहीं वहाँ पर भौतिक था
सब दृश्य वहाँ देवोपम था-
जो कुछ भी था अति उत्तम था,

गो-दुग्ध-धार से नहलाया-
फिर वस्त्र अलौकिक पहराया,
कीर्त्तन का अनुपम गान हुआ-
प्रभु का पूरा सम्मान हुआ,

जब इन्द्र स्वय सतुष्ट हुए-
सब देव परम परिपुष्ट हुए,
तब प्रभु को ले भू पर आये-
फिर मरुदेवा को बिठलाये

निद्रा से उसे जगा बोले-
कैसे हैं मेरे प्रभु भोले,
हम अवधि ज्ञान से जान गये-
आ स्वय यहाँ भगवान गये,

ये जग की कीर्ति बढ़ायेंगे-
आनन्द विमल बरसायेंगे,
माता हम सब नत-मस्तक है-
ये ही जग के उद्धारक है,

सब देव लौटकर जाते हैं-
धरती पर सुयश सुनाते हैं,
पुरजन-पुरिजन फिर आते हैं-
बालक को गोद उठाते हैं,

फिर जग में जो होता उत्सव-
सब राग हुआ वैसा उद्भव,
घर-घर में वन्दनवार सजा-
इकतारा-शख-मृदग बजा,

सब ओर महा आनन्द हुआ-
फूलों में नव मकरन्द हुआ,
कण-कण पर भू के राग जगा-
जन-जन में नव अनुराग जगा,

यश नाभिराज का खूब बढा-
जीवन था गौरव व्योम चढा,
बल-सिद्धि-प्रतिष्ठा सब फैली-
देते थे स्वय धनद थैली,

कुछ कमी नहीं जीवन में थी-
सतुष्टि सभी के मन में थी,
दृग मरुदेवा का जगता था-
सब सपना-सा ही लगता था,

आश्चर्य चकित थे नर भू पर-
थे देव सभी हर्षित ऊपर
यह घडी अलौकिक आई थी-
कुछ अनुपम आभा छाई थी,

था वृषभ-चिन्ह प्रभु के उरू पर-
चौदह सपनों में प्रथम सुघर,
देखा था माता ने इसको-
अब देख रहे थे सब जिसको,

इस हेतु ऋषभ ही नाम पड़ा-
था रूप अतुल अति सौम्य बड़ा,
जो साथ बालिका जन्मी थी-
मृदु कोमल और सलौनी थी,

वह सुमगला बन हर्षाई-
धरती पर यश सौरभ लाई,
माँ-बाप सभी हर्षित होकर-
अन्तर का सब कलमष धोकर

आनन्द मनाया करते थे-
नव ज्योति जगाया करते थे
पाँच अप्सराएँ धात्री थीं-
प्रभु की सेवा की पात्री थीं,

ये इन्द्रदेव की आज्ञा से-
उनकी ही निर्मल इच्छा से,
आकर प्रभु सेवा-लीन हुई-
मधुराग भरी ज्यों वीण हुई,

नव मोद-प्रमोद जगा सुन्दर-
आनन्दमयी इस धरती पर,
जब जहाँ दृष्टि पड़ती जिसकी-
थी धार पियूष-भरे रस की,

प्रभु चन्द्र-कला से बढ़ते थे-
नव आयु शिखर पर चढ़ते थे,
सब देख उन्हें अति हर्षित थे-
सब मन-ही-मन आकर्षित थे,

वह घड़ी दिव्य-सी लगती थी-
सब छटा अलौकिक जगती थी,
जन-जन में पुण्य-सुवास भरा-
जीवन में भव्य प्रकाश भरा!

पचदश सर्ग

एक वर्ष के आदिनाथ थे-
बालक अद्भुत सुन्दर
उन्हें देखते जड़-चेतन सब-
विमल भाव से भरकर

ये ही आदि महामानव थे–
सस्कृति के आलेखन,
भावी सृष्टि इन्हीं से पाने–
को था सब उद्बोधन,

देव सकल सब अवधि-ज्ञान से–
इनको जान चुके थे,
इनके उन्नत शुभ विकास को–
सब पहचान चुके थे,

इसी लिए क्षण-क्षण सब आकर–
अपनी विनय सुनाते,
इनके पावन गुण-विधान को–
कहते नहीं अघाते,

सुरपति ने खुद साज सजाकर–
उत्सव खूब मनाये,
बालक की देवोपम छवि पर–
अपना प्यार लुटाये,

एक बार थे इन्द्र पधारे–
इक्षु-यष्टि ले कर में,
देखा प्रभु ने पुलकित होकर–
सुरपति को निज घर में

हाथ बढ़ा कर कर इक्षु-दण्ड का-
ग्रहण किया फिर हँस के
इन्द्र देव के हाथों से ले-
पकड़ लिया था कस के,

इक्षु-दण्ड के कारण ही-
इक्ष्वाकु वंश कहलाया,
वंश-प्रतिष्ठित कर सुरपति ने
अपना स्नेह जताया,

आदि पुरुष इक्ष्वाकु वंश के-
नित-नित बढ़ते आये,
सकल भुवन में मानवता की-
नयी किरण फैलाये,

जन्म-काल से ही तो इनको-
अतिशय चार मिले थे,
इनके कोमल अंग फूल से-
निर्मल और खिले थे,

स्वेद-रोग औं मल से उनका-
सुन्दर वदन रहित था,
स्वर्ण-कमल से शोभित वह तन-
नव मकरन्द सहित था,

रक्त-मास गो-दुग्ध सरीखा-
उज्ज्वल औं निर्मल था,
सदा सुगध भरा तन उनका-
लगता नव शतदल था,

सब आहार-निहार बना था-
चर्म-चक्षु से गोपन,
केवल भाव सुमन जैसे ही-
रहते थे मृदु गुम्फन,

साँस-साँस से विकसित नीरज-
की नव गध लुटाते,
मलयज की निस्सीय सुरभि-सी-
भू पर शोभा पाते,

शिशुपन बीता, यौवन आया-
निखरा रूप सुहाना,
अग-अग से झलक रहा था-
रति-पति का मुस्काना,

मस्तक ऊँचा पर्वत-सा था-
दीप्तिमान चमकीला,
कोमल सेमल-सा था सिर पर-
केश घना घुघरीला,

चाँद अष्टमी का हो जैसे-
या ललाट त्यों उन्नत,
मुख की छवि जाज्वल्य ज्ञान की-
आभा से थी अवगत

दोनों कधे वृषभ सरीखे-
घुटनों तक थी बाहें,
ऋद्धि-सिद्धि आती थीं उन तक-
अनायास अनचाहे,

आँखे श्वेत कमल जैसी थी-
ज्ञान प्रभा ने शोभित,
सुघड़ नासिका, ओष्ट बिम्बफल-
करते थे मन मोहित

गोलाकर शख जैसी थी-
उनकी ग्रीवा मोहक
चौड़ा वक्षस्थल लगता था-
नयी सृष्टि का प्रेरक,

मास-पेशियाँ बड़ी पुष्ट थीं-
सभी तरह से सुन्दर,
मत्स्य समान उदर था, नाभी
गग-भँवर सी भास्वर,

हस्ति-शुण्ड-सी जघाएँ थीं-
गोल डिम्ब-से घुटने,
गति-यति पर फुलझड़ियाँ मानो-
लगती क्षण-क्षण छुटने,

पावों में थे चिन्ह अनेकों-
शुभ लक्षण के अंकित,
पर्वत-नगर-डगर औ सागर-
स्वस्तिक चक्र समन्वित,

सभी तरह से परम सुशोभित-
प्रभु की थी वह काया,
उन्हें देख कर मोह सभी के-
मन में सदा समाया,

उनकी सेवा करने को सब-
रहते थे नित आतुर
विविध विलक्षण लक्षण से थे-
मोहित सारे नर-सुर,

सौधर्मेन्द्र सदा देते थे-
सब दिन उन्हें सहारा,
धरती के सब जड़ चेतन के
वे हीये दृग-तारा,

सभी तरह थे तुष्ट, किन्तु था-
अह न उनके मन में,
ऐसा मनुज नहीं आया था-
अब तक निखिल भुवन में।

षष्ठदश सर्ग

ताड़ वृक्ष के नीचे कोई–
एक युगल था खेल रहा,
उन दोनों में युगों–युगों से–
कोई अद्भुत मेल रहा,

बड़ा प्रेम था, बड़ी लगन थी-
दोनों में था नेह सदा,
वे थे इस धरती पर मानो-
एक प्राण दो देह सदा,

किन्तु अचानक ताड़-वृक्ष का-
भारी-सा फल टूट गिरा,
नर-बालक मर गया, बालिका-
का मानों सौभाग्य फिरा,

रही बालिका रोती, माता-
और पिता के साथ वहाँ,
जैसे-तैसे रही काटती-
दु ख-ही-दु ख वह जहाँ-तहाँ,

नाम 'सुनन्दा था, वह भू पर-
रूपवती भी न्यारी थी,
सब कुछ होने पर भी बचपन-
में किस्मत की मारी थी,

कुछ दिन में माँ-बाप अचानक-
उसको रोते छोड़ चले,
बचा-खुचा था साहस जो भी
उसको भी वे तोड चले

अब तो एक अनाथ बालिका–
बनकर समय बिताती थी,
जैसे–तैसे आँसू पीकर–
चुपके–से सो जाती थी,

कोई उसे पकड़ कर अपने–
नाभि नृपति को देते हैं,
'ऋषभदेव की पत्नी होगी'
कह कर कुलकर लेते हैं,

सुनकर उसके मन में सहसा–
दिव्य भाव कुछ जगता है,
प्रभु का आशीर्वाद मिला है–
उसको ऐसा लगता है,

मुग्ध बनी वह खड़ी रही बस–
खोई अपने भावों में,
देखा रही थी छाले कितने–
भरे पड़े हैं पावों में,

यही समय था स्वय इन्द्र भी–
मन–ही–मन थे सोच रहे,
प्रभु की उम्र विवाह योग्य हैं–
जाकर उनसे तुरत कहें,

सुरपति आकर प्रभु को अपने-
मन की बात बताते हैं,
बड़े प्रेम से भू पर आकर-
प्रभु का ब्याह रचाते हैं,

बनी सुनन्दा औं सुमगला-
उभय पत्नियाँ स्नेहमयी,
कर्म-श्रृखला हुई प्रवाहित-
भूतल पर फिर नयी-नयी,

सभी देव एकत्र हुए थे-
उनका ब्याह रचाने को,
सभी देवियाँ तत्पर लगतीं-
मगल-साज सजाने को,

बाजे-गाजे वस्त्राभूषण-
घर-घर खूब सजाते हैं,
विधि-विधान से शख बजाकर
उत्सव खूब मनाते हैं

प्रभु को सुन्दर सिहासन पर-
लाकर सब बैठते हैं,
मडप में गन्धर्व स्वय ही-
मगल गीत सुनाते हैं,

घर-घर उत्सव जागा भू पर-
प्रभु का शुभ विवाह हुआ,
अब तक नहीं किसी का जग में-
ऐसा था उत्साह हुआ,

इस दिन से ही भरत-क्षेत्र में-
शुभ विवाह की रीति चली,
धर्म-भाव से सद् गृहस्थ के-
अन्तरतर की प्रीति चली,

अनासक्त थे ऋषभ देव पर-
कर्मभूमि में लीन रहे,
उभय नारियों के सँग में ही
सृष्टि -हेतु तल्लीन रहे,

पूर्व लाख षट् वर्ष बिताये-
दोनों ही के साथ-साथ,
गृह-जीवन की साधु-व्यवस्था-
फैली भू को कर सनाथ,

उसी समय सर्वार्थ-सिद्धि से-
बाहु-पीठ का पुण्य जीव,
नव सुमंगला कुक्षि-रत्न में-
आए सुख से ही अतीव,

फिर सुबाहु औं महापीठ के-
जीवन बिहँसते आते हैं,
सती सुनन्दा-कुक्षि-मध्य ही-
अपना जीवन पाते हैं,

मरुदेवा की तरह गर्भ की-
महिमा जो बतलाते हैं
ऐसे चौदह स्वप्न मगला-
को भी उस क्षण आते हैं,

सुनकर प्रभु ने कहा कि देखो-
स्वप्न तुम्हारा सुन्दर है
होंगे चक्री पुत्र तुम्हारे-
ऐसा ही यह अवसर है,

ब्राह्मी और भरत दो सुत फिर-
मुग्ध मगला पाती है,
सपनों की सब कथा श्रवण कर
मन-ही-मन मुस्काती है

हुए सुनन्दा के फिर दो सुत-
सुन्दर धीर-प्रवीर बड़े,
बाहुबली औं देवि सुन्दरी-
कमश उनके नाम पड़े,

इसी तरह परिवार ऋषभ का–
अविरल भू पर बढ़ता है,
एक–एक पग सख्या का फिर–
ऊपर को ही चढ़ता है,

सौ पुत्रों में दो ही कम सुत–
आदिनाथ ने पाये थे,
पहले–पहल कुशल अनुशासन
भू पर वही चलाये थे,

लोग–बाग जब बढ़े, धरा पर–
तरह–तरह का शोर बढ़ा
राग–द्वेष, अन्याय–न्याय का–
अकुर चारों ओर बढ़ा,

कुछ मर्यादा–पालक थे, तो
कुछ भजक कहलाते थे
कोई शान्त भाव से रहते,
कोई गर्व दिखाते थे

कुछ अनुचित घटनाएँ सहसा–
वहाँ घटित हो जाती थी
कहीं–कहीं पर स्वार्थ भावना–
अपना शीश उठाती थी

मानव-मानव के अन्तर में-
नया रूप यह आया था,
कहीं किसी ने घृणा-द्वेष का-
काला सर्प जगाया था,

दण्ड-न्याय से, कोई किसको-
कैसे पर दे सकता था,
सब थे एक कहीं पर कोई-
अलग न कुछ भी लगता था,

सब थे चिन्तित इस धरती का-
राजा एक बनायेंगे
उसकी ही छाया में हम सब
सुख से समय बितायेंगे।

सप्तदश सर्ग

कर्म भूमि है पुण्य धरित्री–
नयी व्यवस्था लानी है,
इस धरती पर आदिनाथ की–
पहली यही निशानी है,

एक दिवस सब लोग जुटे थे–
भीड़ लगी कुछ भारी थी,
सब के मन में राग–द्वेष की
सुलग रही चिनगारी थी,

ऋषभ देव से बोले आकर
कैसे हम सब शान्त रहें?
घर–घर फैली कलह–घृणा से
कब तक हम आक्रान्त रहें?

कोई नहीं किसी की सुनता–
अपना ही सब करते हैं,
अपनी–अपनी डफली सब की–
सब स्वच्छन्द विचरते हैं,

कहीं नहीं मर्यादा हम में–
लगता सब कुछ शेष हुआ,
पुण्य–भाव सब खोकर मानो–
निर्धन सारा देश हुआ,

ऋषभ देव ने शान्त चित्त से–
कहा कि मेरी बात सुनो,
इससे भी भीषणतर होगा–
धरती पर उत्पात, सुनो।

हम सब चलकर कुलकर को अब–
सारी बात बतायेंगे,
उनकी आज्ञा से धरती का–
भूपित एक बनायेंगे,

तभी हमारे दिन फिर सकते–
शान्ति धरा पर छायेगी,
सद्–विचार जागेंगे नर में–
नयी एकता आयेगी,

सभी वहाँ से नाभि राज के–
पास तुरत ही जाते हैं
हिंसा–द्वेष–घृणा की सारी–
बातें उन्हें बताते हैं,

कुलकर ने सुन सारी बातें–
कहा कि हम सब जान गये,
कैसे हो उपचार रोग का–
यह भी हम पहचान गये,

आप सभी यदि चाहें, तो मैं–
मन की बात बताता हूँ,
सब के सम्मुख ऋषभ देव को–
भू का नृपति बनाता हूँ,

यही घोषणा मेरी, सबको-
जाकर आप सुनायेंगे,
ऋषभ देव हैं सब के नायक-
सब को राह बतायेंगे।

ऋषभ देव को शख बजा सब-
प्रथम नरेश बनाते हैं,
श्रद्धा नत सब उनके सम्मुख-
अपना शीश झुकाते हैं,

साधर्मेन्द्र, ऋषभ का आकर-
शुभ अभिषेक कराते हैं,
रत्न-जड़ित सिहासन लाकर-
उनको स्वय बिठाते हैं,

फिर कुबेर ने कहा कि भू पर-
नव नगरी निर्माण करो,
प्रथम नरेश ऋषभ हैं इनका
सभी तरह सम्मान करो,

नगर बना बारह योजना का-
भव्य विनीता नाम पड़ा
कोई इसे आयोध्या कहते-
इतना था यह दिव्य बड़ा

गणित-तौल औं नाप बताये
जन-जन को खुशहाल किया,
आयुर्वेद बता रोगों का
सब निदान तत्काल किया

अर्थ शास्त्र औं धनुर्वेद की-
भी शिक्षा दे जाते हैं,
कुशल व्यवस्थित विधि से भू का-
शासन-दण्ड चलाते हैं,

रत्न-परीक्षा, हार बनाना-
सब को ही बतलाते हैं,
शिल्प-कर्म की शिक्षा देकर-
सबको सुखी बनाते हैं,

दुष्ट जनों को दडित करने
की भी विधियाँ बतलाई,
राजतत्र की स्वस्थ व्यवस्था
की भी बातें सिखलाई,

कई वर्ष सम्वेत लक्ष तक-
इनका शासन चलता है,
प्रुण्यव्रती मर्यादाओं में-
सबका जीवन ढलता है।

अष्टदश सर्ग

आनन्द अतुल लहराता था–
कण–कण तक मोद मनाता था,
हर ओर हवा जो चलती थी–
डालों पर कली मचलती थी,

थे पौधे-फूल खिले भू पर-
हर राग-रंग में सज-धज कर,
कोयल भी कूक सुनाती थी-
जन-जन में हूक उठाती थी,

मन प्रतिपल प्रतिक्षण गाता था-
मादक उमंग बरसाता था,
पर, चिन्तित थे प्रभु उपवन में-
मधुऋतु के मादक बन्धन में,

क्या राग-रंग रह पायेगा?
यों कब तक मन भरमायेगा?
यह भोग रोग है जीवन का-
अधिकार नहीं उस पर मन का,

जो फूल खिला है आज यहाँ-
रह पायेगा कल यहाँ कहाँ।
क्षण भर में ही सब खिले सुमन-
बन जायेंगे भू पर रज कण

सौन्दर्य यहाँ जो दिखता है-
कब सदा यहाँ वह टिकता है,
ज्यों स्वप्न जीव को आते हैं-
सब उसी तरह मिट जाते हैं,

क्षण-भगुर जग का नाता है-
जो आता है, सो जाता है,
फिर इसमें कैसी प्रीति घनी-
यह मिटने वाली सृष्टि बनी,

जब चिन्तन में प्रभु लीन हुए-
जब अपने में तल्लीन हुए,
वैराग्य हृदय में जाग गया-
मन सुख-साधन सब त्याग गया,

सब मोह हृदय का टूट गया-
ससार समूचा छूट गया,
तब देव अनेकों आये थे-
श्रद्धा से विनय सुनाये थे,

प्रभुवर ने सृष्टि चलाई है-
जीने की रीति बताई है
अब और तनिक उपकार करें-
धरती पर धर्म प्रचार करें,

प्रभु ने सुनकर सब बात विमल-
कर लिया हृदय को शान्त अचल,
मैं घर से बाहर जाऊँगा-
मैं आतम ज्योति जगाऊँगा,

फिर मन में कर के दृढ निश्चय-
दे दिया भरत को राज अभय,
सब राज-पाट ऐश्वर्य अतुल-
सब पुत्रों को दे दियो विपुल,

थे सात्विक भाव स्वत आये-
मन में नव ज्ञान विमल छाये,
फिर वर्षीदान किया ऐसा-
था अब तक नहीं हुआ जैसा,

रखते कुबेर भण्डार भरा-
था मन में इतना प्यार भरा,
जो भी याचक बन आते थे-
मुँह माँगा ही सब पाते थे,

फिर एक वर्ष तक दान दिया-
सब याचक का सम्मान किया,
वर्षा का जल भरता जैसे-
सब को ही दान दिए वैसे,

जब दीक्षा का अवसर आया-
तब सुरपति का मन अकुलाया,
वे प्रभु-सेवा में आते हैं-
दीक्षा-अभिषेक कराते हैं,

थी शिविका एक विमल सुन्दर–
बैठे थे जिस पर आदिश्वर,
सब देव मनुज फिर आते हैं–
शिविका को सभी उठाते हैं,

सुर–गण के बाजे बजते हैं–
कण–कण पर मगल सजते हैं,
सौधर्म वहाँ पर आते हैं–
नूतन प्रकाश फैलाते हैं,

फिर दिशा–दिशा जग जाती है–
हलचल–सी भू पर आती है,
सब प्रभु की जय–जय कहते हैं–
आनन्द मगन सब रहते हैं

एकोनविंश सर्ग

प्रभु का चरित परम पावन है–
कोई मन में गुन ले,
पाप ताप सब मिट जाते हैं–
कोई क्षण भर सुन ले,

दीक्षित होकर प्रभु ने जग को-
निर्मल राह दिखाई,
इनके सम्मुख ऋद्धि-सिद्धि सब-
हाथ जोड़ती आई,

शिविका प्रभु की उठी लोग सब-
साथ-साथ थे जाते,
पत्नी-पुत्र सभी जन-परिजन-
प्रतिपल मोद मनाते,

देवलोक की सारी आभा-
उतरी थी इस भू पर,
सभी देवता किन्नर आये-
अपने यान सजाकर,

मरुदेवा औं उभय पत्नियाँ-
पुत्र सकल सब आये,
वधुएँ भी सब चलीं साथ में-
सब अन्तर दाह छिपाये,

आकर के सिद्धार्थ विपिन में-
शिविका से प्रभु उतरे,
वे अब जग से बहुत दूर थे-
दिव्य भाव में गहरे,

तुरत अशोक विटप तर आये-
क्षण भर लिया सहारा,
अपना सुन्दर वस्त्राभूषण-
पल में वहीं उतारा,

उसी समय सुरपति ने आकर-
देव-दूष्य-पट देकर,
कहा यही परिधान आपका
देवोपम अति सुन्दर,

चार मुष्टि का लोच किया तब-
प्रभु ने हर्षित होकर,
लिया इन्द्र ने प्रभु-केशों को-
अपने पट में सत्वर,

पच मुष्टि जब उठी इन्द्र ने-
प्रभु से किया निवेदन,
इतना भर रहने दें सिर पर
केशों का अवगुण्ठन,

इनकी शोभा बड़ी अतुल है-
ये हैं सब से न्यारे,
पवन-वेग से उड़-उड़ कर ये-
लगते प्यारे-प्यारे,

इन्द्र देव फिर लुचित केशों-
को लेकर खुद आये,
सागर की उत्ताल तरगों
में ही स्वय बहाये,

सब कुछ शान्त हुआ तब प्रभु ने-
सात्विक रूप दिखाया,
सासारिक वृत्तियाँ सब त्यागी-
सब को सुखी बनाया,

मोक्ष-मार्ग-आरूढ हुए जब-
सच्ची शान्ति मिली थी,
सकल वासना-हीन हुए तब
सच्ची भक्ति खिली थी

चार हजार नृपति भी उनके-
सँग ही दीक्षित होकर,
परम तत्त्व को ग्रहण किया था-
अपना कल्मष धोकर,

लौट गए सब परिजन-पुरजन-
वदन करते-करते,
आदिनाथ पर, मुनियों के सग
निशिदिन रहे विचरते,

प्रभु रहते थे निराहार पर-
अन्य साधु घबड़ाये,
तप का ऐसा कष्ट किसी से-
उठता नहीं उठाये,

आखिर सब ने कंद-मूल-फल-
ग्रहण किया फिर अभिनव,
तापस का व्रत-भोग हुआ था
तब से जग में उद्भव,

कच्छ और नृप महाकच्छ के-
भाव बड़े थे मनहर
उनके दो सुत नमी और थे-
विनमी भू पर सुन्दर

वे विदेश में रहे इसी से-
जान न कुछ भी पाये,
ऋषभ देव ने धर्म-तीर्थ जो-
मंगलमय अपनाये

जान गए जब ऋषभ देव ने-
राज भरत को देकर,
ग्रहण किया सिंहासन सबसे-
ऊँचा इस अवनी पर

वे भी प्रभु के साथ हुए तब-
अपना सुख-दुख खो के,
प्रभु के ही संग रहे अहर्निश-
प्रभु के ही बस हो के,

नाग जाति के इन्द्र स्वयं ही-
आये तब समझाने,
उनकी निष्ठा-भक्ति देखकर-
लगे स्वयं हर्षाने,

विद्याधर का राज्य तुरत ही-
उनको वे दे जाते,
अनगिन विद्या-सिद्धि अनेकों-
क्षण में सब हैं पाते,

निराहार औ' मौनी रहकर-
प्रभु थे सदा विचरते,
अपने उन्नत आत्मिक बल से-
सब का मंगल करते,

एक बार प्रभु 'गजपुर' नामक-
श्रेष्ठ नगर में आये,
अपनी दीप्त प्रभा का सद्य -
नव प्रकाश फैलाये,

बाहुबली का पौत्र वहाँ-
श्रेयास कुमार नृपति था,
शुद्ध विमल भावों से भूषित-
वह निर्मल अधिपति था,

उसने सुना इसी नगरी में-
प्रभु हैं स्वय पधारे,
मुग्ध हुआ वह बड़ा पुण्य है-
जागे भाग हमारे,

दौड़ा-दौड़ा चला वहाँ से-
जोड़ों दोनों कर को,
प्रभु में मन था लीन, हृदय से-
भूल गया वह घर को,

सम्मुख जाकर विनय सुनाई-
पुण्य जगे हम सब के,
और नहीं तो इस जग में हम।
जागे ऐसे कब थे,

तुम ने ही प्रभु जीवन-जड़ता-
में नव जागृति भर दी,
अन्तर-तर में सुरति जगा कर-
मति-गति निर्मल कर दी,

अब हम शुद्ध-विशुद्ध हुए हैं-
जागा है तप हम में,
बहुत दिनों तक जीव हमारा
रहा भटकता तम में,

दया करो हे, जग के तारक-
समय सुहावन आया,
इक्षु-सुरस बहराकर प्रभु को-
अपना भाग्य जगाया,

पारण किया इक्षु-रस प्रभु ने-
देख सभी हर्षाये,
देव-नाग-सुर-किन्नर सारे-
मोद मनाते आये,

निराहार तप करते-करते-
शिथिल हुआ था जो तन,
तुरत हुआ देदीप्यमान जब-
किया इक्षु-रस पारण,

पुष्ट हुआ तन, मन में निर्मल-
नयी विभा फिर जागी,
उनकी सात्त्विक वृत्ति ज्वलित हो
प्रकटी नव अनुरागी,

पुन मौन-व्रत धारण कर वे-
उर्ध्वमुखी हो आए,
नगरी के उद्यान बीच फिर-
बट-तर ध्यान लगाए,

आत्मिक बल जागा फिर ऐसा-
छिन्न हुई सब ग्रथी,
हुई प्रकाशित सृष्टि, हुए थे-
दिव्य-धाम के पथी,

केवलज्ञान प्राप्त कर जग में-
नव प्रकाश फैलाये,
केवल दर्शन सिद्ध हुआ-
सर्वज्ञ देव कहलाये,

सब को मिला परम सुख शीतल-
बना विश्व अनुगामी,
देव सभी भू पर आ बोले-
जय हे, जय हे स्वामी

देव लोक के इन्द्रों ने फिर-
मगल गीत सुनाये,
प्रभु के केवलज्ञान प्राप्ति पर-
उत्सव खूब मनाये,

'ऐरावण' हाथी पर चढ कर-
इन्द्रदेव थे आए,
धर्म-चक्र के समवसरण को-
भू पर स्वय रचाए,

इस समवसरण में आने पर-
नहीं कहीं था बन्धन,
देव-मनुज-तिर्यक आ-आ कर-
धन्य बनाये जीवन,

अब तो केवल ज्ञान-दीप्त प्रभु-
सब का मगल करते,
विचर रहे थे अग-जग में नव
ज्योति-ज्ञान की भरते,

किसी तरह का मोह हृदय में-
कुछ भी शेष नहीं था,
वैर-प्रीति औ' भय का कुछ भी-
मन में क्लेश नहीं था,

अपना और पराया क्या था-
आत्म रूप जड़ चेतन,
उनकी दिव्य विभा से ज्योतित-
भूतल का था कण-कण।

विंश सर्ग

जन-जन के हित थी कल्याणी-
ऋषभदेव की आत्मिक वाणी,
जड़-चेतन सब खिल जाते थे-
जो भी सुनते फिर आते थे,

दूर-दूर तक प्रभु थे जाते-
सब को पावन-शुद्ध बनाते,
लेकिन जब वे घर से आये-
मरुदेवा थी ध्यान लगाये,

माता थी, बस दुख सहती थी-
सबसे मर्म व्यथा कहती थी,
ऋषभ देव हैं कहाँ हमारे-
कहाँ गये नयनों के तारे,

यही अहर्निश रटती रहती-
पुत्र-वियोग सदा थी सहती,
भरत सान्त्वना कुछ देते थे-
व्यथा बाँट कुछ तो लेते थे,

फिर भी मन में शान्ति नहीं थी-
सुख की कोई कान्ति नहीं थी,
एक दिवस पर भरत खिले थे-
दो मगल सदेश मिले थे,

केवलज्ञान प्राप्त कर सारे-
आज पिता-श्री स्वय पधारे,
केवलदर्शन प्राप्त हुए हैं-
जग में वे अब आप्त हुए हैं,

अन्य राज्य सम्मान छुआ था–
'चक्र सुदर्शन' प्रकट हुआ था,
लोगों की थी वाणी निर्भय–
चक्रवर्ती भूपति की जय-जय।

भरत नृपति ने स्वय विचारा–
धर्म मुख्य है जग का सारा,
पहले केवल-उत्सव होगा–
मगलमय तब ही भव होगा,

देव हमारे घर आये हैं–
कर्मो के शुभ फल लाये हैं,
पहले हम सब वहीं चलेंगे–
उनकी आशिष हम सब लेंगे,

भरत लगे भावों में बहने–
चले स्वय माता से कहने,
जिनके हित माँ, आहें भरती–
रात-रात भर चिन्ता करती,

वही पिता-श्री अब आये हैं–
मगल-पावन क्षण लाये हैं,
उनका अन्तर-सुमन खिला है–
केवल-दर्शन-ज्ञान मिला है,

उन-सा जग में नहीं दूसरा,
कोई ऐसे तपकर निखरा,
उनमें निर्मल ज्योति भरी है-
उनकी आत्मिक छवि उभरी है,

वे ही सब का मंगल करते-
दु ख-क्लेश सब के हैं हरते,
हम सब कितने धन्य हुए हैं-
कैसे स्वय अनन्य हुए हैं,

चलो, चलो माँ देर न करना-
धर्म-चक्र का पथ है धरना,
दु ख में जो भी बीता, बीता-
अब तो तुम हो परम पुनीता,

प्रभु के चरणों को ध्याकर हम-
पायेंगे सब सुख देवोपम,
गज-रथ पर मरुदेवा चढ़कर-
चली स्वय ही आगे बढ़कर,

साथ भरत भी वहीं विराजे,
स्वागत के सब साधन साजे
देखी धवल ध्वजा फहराते-
देव-देवियाँ सबको आते,

बजी दुन्दुभि बड़ी सुरीली-
भाव-भक्ति से गीली-गीली,
यशो-गान प्रभु का होता था-
धीरज माता का खोता था,

समवसरण माता ने देखा-
मन्त्र-मुग्ध सब दैवी लेखा,
अपलक रही देखती जी भर-
वीतराग का सौरभ सुन्दर,

आत्म-तुष्टि का सुख-साधन था-
दु ख का वहाँ न कोई कण था,
अपने में वह लीन हो गयी-
अक्षय सुख में स्वय खो गयी,

आत्म-प्रकाश समुज्ज्वल जागा-
कर्म शुभा शुभ क्षण में त्यागा,
योग-निरोध हुआ जीवन में-
मिला मोक्ष उनको उस क्षण में

ज्योति-ज्योति में मिलकर अपने-
पूर्ण किये जीवन के सपने,
देवों ने उनका तन लाकर-
बहा दिया सागर के जल पर

भरत शोक से विह्वल होकर-
समवसरण में आये सत्वर,
तीर्थंकर भगवान वहाँ थे-
अनुपम देव महान वहाँ थे,

उनका शुभ उपदेश श्रवण कर-
बना सभी का जीवन सुन्दर,
प्रभु ने कहा कि भूतल सारा-
मोह-दुख का है अगारा,

प्राणी सब इसमें जलते हैं-
अपने-अपने को छलाते हैं,
मनुज-जन्म है श्रेष्ठ सभी से-
सत् कर्मों में लगे अभी से

जो लोकोत्तर साधन करते-
वही नहीं माया से डरते,
उनके बन्धन सब कट जाते-
ऐसे नर सच्चा सुख पाते,

सकल इन्द्रियों का सुख मोहक-
लगता केवल कुछ ही क्षण तक,
इनका है परिणाम भयकर-
ये ही हैं सब दुख के गह्वर

जो ऐश्वर्य शिखर पर चढ़ता-
भौतिक साधन में है बढ़ता,
उसका अन्त दुखद होता है।
भोग-भोग कर वह रोता है।

जग साधन में शान्ति नहीं है
सच्चा सुख तो और कहीं है,
लोकोत्तर साधन को जानो-
अपने को तुम खुद पहचानो,

तभी शान्ति पाओगे जग में-
अक्षय सुख के पथ जगमग में-
ज्ञान-रूप जो सूर्य अखण्डित-
वही अचल सुख से है मण्डित,

त्री-रत्नों का उज्जवल दर्शन-
उसे प्राप्त करने के साधन,
पहला ज्ञान-रत्न है भास्वर-
पाने को हो जाओ तत्पर

अवधिज्ञान के साथ निरामय-
प्राप्त करो सब साधन निश्चय
तब पाओगे पुण्य अपरिमित-
आत्मा का ऐश्वर्य असीमित

दर्शन-रत्न दूसरा साधन-
इससे होता सात्विक जीवन,
सम्यक दर्शन से अन्तर में-
ज्ञान-ज्योति जगती है उर में,

चरित रत्न है अन्तिम साधन-
इससे खुलते सारे बन्धन,
सत्य-अचौर्य-अहिसा निर्मल-
ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह उज्ज्वल,

पाँच व्रतों से यह है शोभित-
अखिल भुवन का पुण्य समन्वित
इसे साधने में जो खोता है-
वही भुवन-भूषित होता है,

पहली थी यह धर्म-देशना-
सब में जागी पुण्य साधना,
प्रभु ने पावन राह बताई-
सब के मन में ज्याति जगाई,

भरत नृपति औं सब जन-परिजन-
दीक्षित हुए वहीं पर उस क्षण,
श्रावक औं श्राविकायें मिलकर-
सघ बना नूतन इस भू पर,

धर्म-चक्र के रथ बढ़ते थे-
ज्योति-शिखर पर सब चढ़ते थे,
मन मे नव अनुराग जगाये-
अपने-अपने घर सब आये,

सब के मन का द्वार खुला था-
अन्तर का सब कलुष धुला था,
कहते थे सब मन से निर्भय-
आदीश्वर तीर्थंकर की जय।

एकविंश सर्ग

प्रभु की सुनकर प्रथम देशना-
भरतेश्वर हर्षाये,
अन्तर में आनन्द भरे वे-
राजमहल में आये

आयुध शाला में शोभित था–
चक्र–सुदर्शन जगता,
किसी अलौकिक यश का द्योतक–
शक्ति–पुञ्ज–सा लगता,

भरत नृपति ने उसे नमन कर–
सब को तुरत बुलाया,
मन्त्री–ज्ञानी–सेनापति को
लाकर तुरत दिखाया,

सब ने कहा कि देखें राजन्–
इसके हैं शुभ लक्षण
चक्रवर्ती नृप आप बनेंगे–
धरती पर अब तत्क्षण,

दिशा–दिशा के राजाओं को–
अश्व भेज बतला दें
सब आधीन आपके ही हैं–
ऐसा ही जतला दें

जिसको भी स्वीकार नहीं हो–
युद्ध भूमि में आये,
मेरे सैनिक योद्धाओं से–
भिड़कर शक्ति दिखाये,

इस धरती पर चक्रवर्ती बस-
आप एक ही होंगे,
बल पौरुष में सब से बढ़कर
आप नेक ही होंगे,

दिशा-दिशा के सब नृप आयें-
अपनी भेंट चढ़ाये,
महाराज की जय का झंडा-
जन-जन तक फहरायें,

भरत नृपति ने सेनापति को-
सब कुछ तुरत बताया,
श्याम-कर्ण सुन्दर-सा घोडा-
राज द्वार पर आया,

उस पर थे आदेश लिखे औं-
महाराज की गथा,
सब कुछ था जो भरत नृपति ने-
अब तक वहाँ किया था,

और लिखा,"स्वीकार करें अब-
मुझको अपना स्वामी,
करें समर्पित सब कुछ, बनकर-
मेरे ही अनुगामी,

भरत-क्षेत्र के आदिनाथ-
तीर्थंकर का मैं सुत हूँ,
चक्रवर्ती मैं प्रथम धरा पर-
बल पौरुष से युत हूँ,

इसमें है कल्याण सभी-
सम्मान मिलेगा सबको,
मेरे शासन में रहने का
मान मिलेगा सब को",

अश्व चला सब ओर सभी-
राजाओं ने भी देखा,
पढ़ते थे सब ध्यान लगाकर
अंकित था जो लेखा,

दिशा-दिशा के राजाओं ने-
सोचा और विचारा,
सब ने भरत नृपति को भू का-
महाराज स्वीकारा

भरत नृपति के छोटे भाई-
बाहुबली अकुलाये,
वे विरोध में भाई के ही-
सबसे आगे आये,

उनके अन्य भाईयों ने तो
उनका शासन माना,
भरतेश्वर के बल-पौरुष को-
क्षण भर में पहचाना,

केवल बाहुबली थे ऐसे-
जो न तनिक झुकते थे,
महाकाल के आगे भी वे-
कभी नहीं रुकते थे,

शक्ति प्रचण्ड भरी थी उनमें-
बडे साहसी नर थे,
युद्ध-कला में इस धरती पर-
सब से ही बढ़कर थे,

सहसा दोनों दल में रण की-
भेरी पड़ी सुनाई,
दोनों की सेनाएँ सजकर
युद्ध-क्षेत्र में आई,

हुए सामने दोनों भाई-
तब फिर तनिक विचारा,
सारी सेना अगर मरी तो
होगा कौन सहारा,

अच्छा होगा हम दोनों ही-
द्वन्द्व-युद्ध अब कर लें,
केवल अपने शोणित से ही-
इस भूतल को भर दें,

दृष्टि-युद्ध औं वाक-युद्ध-
आरम्भ हुआ था भारी,
एक दूसरे पर करते थे-
जय की ही तैयारी,

सभी तरह से बाहुबली ही-
श्रेष्ठ वहाँ थे पडते,
शिथिल हुए से भरतेश्वर थे-
उनसे लडते-लडते,

मल्ल-युद्ध फिर लगा वहाँ पर-
होने उनमें तत्क्षण,
एक दूसरे पर करते थे-
घात भयकर क्षण-क्षण,

बाहुबली ने भरतेश्वर को-
ऊपर पकड़ उछाला
लोक लिया पर, ज्यों ही वह था-
गिर कर मरने वाला

दिया भरत को तभी यक्ष ने-
चक्र भयकर ज्वाला,
यह आयुध थ दुश्मन का बल-
पौरुष हरने वाला,

चक्र चला, पर बाहुबली का-
निष्ट नहीं कर पाया,
कर प्रदक्षिणा बाहुबली की-
पास भरत के आया,

चक्रगुणी था सह-गोत्री पर-
कभी नहीं था चलता,
बाहुबली पर फिर कैसे वह-
अपनी आग उगलता?

इसे देख कर बाहुबली ने-
अपना क्रोध जगाया,
मुष्टि तान वह भरतेश्वर के-
आगे दौड़ा आया,

किन्तु अचानक लगा सोचने-
क्या करने मैं जाता,
क्रोध-विवश मैं भाई पर ही
अपना हाथ उठाता,

यह है निर्घिन कर्म इसे में-
कभी नहीं कर सकता,
तुच्छ राज्य के लिए बन्धु पर-
शस्त्र नहीं धर सकता,

पूज्य पिता ने तृणवत् सारा-
राज्य भुवन का त्यागा,
उसको ही लेने की खातिर-
लोभ हृदय में जागा,

नहीं-नहीं मैं नहीं करूँगा-
ऐसी क्षुद्र लड़ाई,
राज करेगा सुख से भू पर-
मेरा अपना भाई,

यही सोच वह भरतेश्वर के-
पग पर पड़कर रोया,
मन में फिर वैराग्य जगा वह-
विमल भाव में खोया,

लोच किया सिर के केशों का-
अपने कर से क्षण में,
दीक्षित हुए प्रथम तीर्थंकर-
के ही पूज्य चरण में,

कठिन साधना-व्रत पालन कर-
निर्मल-मन हो आये,
आदिनाथ तीर्थंकर का ही-
धर्म-चक्र फैलाये,

इन्हें देख भरतेश्वर भी अब-
लज्जित थे निज मन में,
सारा वैभव लगा दीखने-
व्यर्थ उन्हें जीवन में,

उसी समय प्रभु आदिनाथ भी-
आये वहाँ विचरते,
अपने शुभ उपदेशों से इस-
जग का मगल करते,

भरत नृपति ने उनके पग में-
जाकर शीश नवाया,
धर्म-तीर्थ को सब के सम्मुख-
जीवन में अपनाया।

द्विविंश सर्ग

नगर-नगर में आदिनाथ के-
पूजन-अर्चन होते थे,
प्रभु के वचनामृत को सुनकर-
धन्य सभी जन होते थे

प्रभु जब कहते निरानन्द है-
जग में कोई सार नहीं
भौतिक वस्तु सभी नश्वर है-
शाश्वत यह ससार नहीं,

माता-पुत्र-पिता औ' पत्नी-
दो दिन के ही नाते हैं,
मनुज मोह के इसी तिमिर में
जीवन व्यर्थ गँवाते हैं,

दुख-ही-दुख है इस धरती पर-
सुख का कोई नाम नहीं,
अपने को जो जान न पाया
उसको कुछ आराम नहीं,

आत्मिक बल के जगने पर ही-
नव प्रकाश मिल पाता है,
इस दुनिया के आगे का भव-
परम सुखद बन जाता है,

उनके सत्-उपदेश श्रवण कर-
लोग बहुत हर्षाते थे,
सच्ची भक्ति हृदय में भर कर-
चरणों पर गिर जाते थे,

भरत-नृपति के सुत थे निर्मल-
जो मरीचि कहलाते थे,
ये बस प्रभु की सेवा में ही-
अपना समय बिताते थे

अक्षरश ये पालन करते-
आदिनाथ जो कहते थे,
उनके सँग ही भीषणतम हिम-
आतप-वर्षा सहते थे,

कष्ट असह्य लगा तो मन में-
उनके थोड़ा मोह जगा,
साधु-सत के तप-व्रत से भी
मन में कुछ विद्रोह जगा,

फिर भी भगवन् आदिनाथ को-
कभी नहीं वे छोड़ सके
आत्मिक ज्योति जगी थी, जिससे-
कभी न नाता तोड़ सके,

लगे रहे प्रभु की सेवा में-
प्रभु का आशीर्वाद लिए,
भक्ति-भाव से प्रेरित होकर-
भावों में उन्माद लिए

भरत नृपति भी धर्म-तीर्थ में-
सभी तरह तल्लीन हुए,
भक्ति-भाव से प्रभु-पूजन में-
मन-से परम प्रवीण हुए,

समवसरण में आदीश्वर जब-
एक बार फिर आये थे,
चरणों पर तब भरतेश्वर ने-
सब कुछ वहाँ चढाये थे,

विमल भाव से भर कर बोले-
मन को हम सब शान्त करें
जग के भगुर यश-वैभव से-
इसे नहीं आक्रान्त करें,

प्रभु को सादर बड़ी विनय से-
हाथ जोड़ फिर नमन किया,
पहले से जो राग-द्वेष थे-
मन में उनका शमन किया

पूछा प्रभु से- भावी जग क्या
ऐसा ही रह पायेगा?
आगे चलकर कौन जगत को-
धर्म-तीर्थ बतलायेगा?

प्रभु ने कहा कि तेरा ही सुत-
जो मरीचि कहलाता है
अभी तनिक भटका-भटका-सा-
अपना पाँव बढाता है

उसका ही भव उन्नत होकर-
इस धरती पर आयेगा,
वह चौविसवाँ तीर्थंकर बन-
महावीर कहलायेगा,



आदिनाथ तीर्थंकर भू पर-
नगर-नगर में जाते थे,
सब जीवों को मगलकारी-
मोक्ष-मार्ग बतलाते थे,

मोक्षाकाक्षी नर-नारी सब-
उनसे दीक्षित होते थे,
उनके धर्म-तीर्थ के जल से-
अपना अन्तर धोते थे

कुछ दिन रहकर वहाँ सभी को-
धर्म-देशना देते हैं,
आत्म-ज्ञान के पथ की शिक्षा-
जन-जन उन से लेते हैं,

लेकिन कुछ दिन बाद वहाँ से–
चलने का अभिधान किया,
नये तत्त्व का इगित था यह–
नया मार्ग सधान किया,

मोक्ष–गमन का समय जगा प्रभु–
अष्टा गिरि पर आते हैं,
एक शिला पर पद्मासन में–
बैठ तनिक मुस्काते हैं,

निराहार तप लीन रहे औ'–
प्राणों का अवरोध किया,
शुक्ल ध्यान सर्वोच्च शिखर पर–
अचलाचल सयोग लिया,

कर्मों के सब बन्धन तोडे–
देह त्याग फिर अमर हुए
मोह–अध मानव के मन में–
दीपक जगमग प्रखर हुए,

इन्द्र और सब देव धरा पर–
एक साथ ही आते हैं,
प्रभु के निर्मल शव को अपने–
हाथों खूब सजाते हैं,

चिता बनाकर इस धरती पर-
दाह-क्रिया सब करते हैं,
प्रथम धरा के तीर्थंकर की-
अस्थि हाथ में धरते हैं,

दाह हुआ था जहाँ, उसे सब-
मिलकर खूब सजाते हैं,
प्रभु का कर निर्वाण-महोत्सव-
पावन चैत्य बनाते हैं,



यही नियम है इस धरती पर
देह धरे सब प्राणी का
जीवन धारण करने वाले-
तीर्थंकर औ' ज्ञानी का,

अपना सत्व बिखेर धरा को-
सुखमय ही कर जाते हैं,
महा तिमिर के अतल गर्त में-
जगमग ज्योति जगाते हैं,

आदिनाथ का यह तन भौतिक-
पच-तत्त्व में लीन हुआ
जीव तत्त्व परमात्व तत्त्व में
मिलकर स्वय विलीन हुआ,

फिर भी अपने भक्तों पर वे–
कृपा सदा वर्षाते हैं,
मोक्ष–मार्ग के अभिलाषी को
सच्ची राह बताते हैं,



आदिनाथ को सदा नमन है–
हर प्राणी हर जीवन का,
नमन उन्हें पर्वत–सागर औ'
धरती के हर कण–कण का,

नमन उन्हें शत्रुञ्जय गिरि का–
शत्रुञ्जय सरि–धारा का,
नमन उन्हें सब नक्षत्रों का–
रवि–शशि औ' ध्रुव–तारा का,

दया करो, कल्याण करो प्रभु–
चरण–शरण में आये हैं,
तिमिर–ग्रस्त हम मोह अन्ध हैं–
खुद को जान न पाये हैं,

आदिनाथ तीर्थंकर की हम–
जय–जय निशिदिन गाते हैं,
हम सब उनका अर्चन–पूजन
करते नहीं अघाते हैं,

जय-जय बाबा आदिनाथ की
तीर्थंकर आदीश्वर की,
नर में नव नारायण की जय-
निखिल भुवन परमेश्वर की,

जय-जय भव के उद्धारक की-
सिद्ध-तपस्वी ज्ञानी की,
परम प्रकाशक सृष्टि विभा की-
योग-निष्ठ विज्ञानी की,

आदि महामानव की जय हो-
जय हो जग के स्वामी की
जय हो, जय हो जग के त्राता-
जय हो अन्तर्यामी की।

— समाप्त